H-130

रीता

प्रतापनारायण टंडन

रीता

डा० प्रतापनारायण टंडन नई पीढ़ी के
सशक्त उपन्यासकार हैं
आप अच्छे कहानीकार और
सफल आलोचक भी हैं
अनुभूतियों एवं भावनाओं से ओतप्रोत
आपकी रचनाएं प्रभावपूर्ण होती हैं

प्रस्तुत उपन्यास 'रीता'
ट्रेजेडी है—एक सफल ट्रेजेडी
स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में
मनुष्य के संस्कारों, उसकी
विवशताओं, सामाजिक मान्यताओं
और मन के अरमानों का
इसमें मार्मिक चित्रण हुआ है
कथा आदि से अन्त तक प्रवाहपूर्ण है

रीता

प्रतापनारायण टंडन

RITA : PRATAP NARAIN TANDON : NOVEL

मूल्य : एक रुपया

रीता

मैं बहुधा आधी-आधी रात के सूनेपन में चौंक पड़ता हूं। मेरे दिन कुछ अजीब-सा, अनिश्चय की स्थिति में बीतते हैं। मैं हर वक्त परेशान रहता हूं। मेरा पौरुष मुझे धिक्कारता है। मुझे अपने किए पर पश्चात्ताप होता है। मैं जब अपने विगत जीवन के बारे में सोचता हूं, तो मुझे वे सारे चित्र अपनी आंखों के सामने साकार होते दिखाई देते हैं, जो मैंने कभी अतीत में देखे थे। वे चित्र मुझे व्यथित करते हैं, मेरे हृदय को मथते हैं और मेरे घाव। को कुरेदते हैं। मैं अपने हृदय की शांति के लिए प्रत्येक संभव प्रयत्न करता हूं, पर वह मुझे नहीं मिलती। मैं कुछ ही समय पहले यहां पहाड़ों पर आ गया था। यह प्रकृति की गोद है। मुझे आशा थी कि यहां मेरे पीड़ित हृदय को अवश्य कुछ शांति मिलेगी। लेकिन ऐसा लगता है, जैसे मैं सदैव के लिए उससे वंचित कर दिया गया हूं।

मुझे ऐसा लगता है, जैसे बहुत समय से मेरे भीतर कुछ पक-सा रहा है। शायद कोई घाव, कोई फोड़ा या कोई वैसी ही चीज़। वह अब धीरे-धीरे मुझे काट रही है, बहा रही है, साल रही है। हो सकता है कि यह केवल एक मानसिक व्याधि हो। मुझे कभी-कभी अपना सिर भयानक रूप से घूमता लगता है। कभी-कभी इतना भारी जैसे उसपर कोई बड़ा भारी पत्थर रखा हो। जब तक यह नहीं

हटेगा, तब तक मुझे शांति नहीं मिलेगी। संभवतः यहां पहाड़ पर पहुंचे हुए मुझे एक महीना पूरा होने आ रहा है। पर मैं देखता हूं कि मेरी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। मेरी घबराहट में कोई कमी नहीं हुई और मेरी व्यथा अब भी वैसी ही तीव्र है। यही नहीं, अब तो मुझे अपने-आपमें कुछ असामान्य प्रतिक्रियाएं लक्षित होती हैं, यद्यपि मनोवैज्ञानिक रूप से उनका कोई बहुत स्वाभाविक आधार भी संभाव्य है। लेकिन फिर भी मैं अपने-आपसे हमेशा यही कोशिश करता हूं कि मेरे व्यवहार में पूर्णरूप से स्वाभाविकता प्रतीत हो और लोग मुझे पागल न समझें। लेकिन काफी होशियारी के बावजूद भी मेरा ख्याल है कि वे मुझे पागल नहीं, तो कुछ सनकी ज़रूर समझते हैं।

आपके मन में स्वभावतः ही यह प्रश्न उठेगा कि आखिर ऐसी कौन-सी बात है जो मुझे इतना उद्विग्न रखती है। असल में, बात यह है कि मेरे जीवन में एक ऐसी घटना घटित हो चुकी है, जिसके फलस्वरूप ही यह सब हो रहा है। पहले मैं यह सोचता था कि अपने दुर्भाग्य की यह कहानी अपने तक ही सीमित रखूंगा। जो कुछ भी घटित हुआ है, वह केवल मेरे हृदय में ही एक पीड़ा-भरी स्मृति के रूप में संयोजित रहेगा। किसी नये आदमी तक यह कथा नहीं पहुंचेगी। लेकिन अब मेरा विचार बदल गया है। अब मैं अपना मन हल्का करने के लिए यह ज़रूरी समझता हूं कि उसे आपको सुना दूं। तभी मेरे दिल का यह बोझ शायद हल्का हो सकेगा, जिसके कारण मेरा जीवन ही भार बना हुआ है।

मैं अपने जीवन में किसी दीर्घकालीन अनुभव का दावा आपके सामने नहीं कर सकता। आपमें से बहुत-से ऐसे होंगे, जो अवस्था में मुझसे काफी बड़े होंगे और मेरी अवस्था इस समय सिर्फ उनतीस वर्ष है। मैंने अभी दुनिया में आपके हिसाब से कुछ नहीं देखा है और

बहुत-से बुज़ुर्गों की नज़र में मैं एक अनुभवहीन युवक ही हूं। मुझे अभी यह दावा नहीं करना चाहिए कि मैं भी कुछ अनुभव रखता हूं और दूसरों को सीख दे सकता हूं। लेकिन मुझे याद आ रहा है कि शायद हेनरी राइडर हैगर्ड नामक विदेशी उपन्यासकार ने अपनी 'शी' नामक औपन्यासिक कृति में कहीं पर लिखा है कि आदमी की उम्र से उसके अनुभव का कोई संबंध नहीं है। हो सकता है कि कोई आदमी अस्सी साल की उम्र का हो और अनुभव के नाम पर बिलकुल कोरा हो। बच्चों की शादी-ब्याह तथा छोटे-मोटे अन्य संस्कारों के अतिरिक्त उसका कोई अनुभव न हो। इसके विपरीत कम आयुवाला व्यक्ति भी दुनिया की यथार्थता से काफी परिचित हो सकता है।

हैगर्ड ने अपने उपन्यास के प्रधान पात्र के सिलसिले में यह बात कही थी। परन्तु मैं वैसे किसी बीहड़ किस्म के अनुभव का दावा नहीं कर सकता। और सच पूछिए, तो बीहड़ता की भी किस्में लोग अपने-अपने हिसाब से बना लेते हैं। मैं तो यहां तक भी नहीं कह सकता कि मेरे इस तुच्छ अनुभव से आप कोई लाभ उठा सकेंगे या आपका कोई मनोरंजन हो सकेगा। हां, यह बात दूसरी है कि आपको मेरी यह कथा सुनने के बाद मुझसे कुछ थोड़ी-सी सहानुभूति हो जाए; और आप यह समझ लें कि फिलहाल इस कहानी को शुरू करने में मेरा इसके अतिरिक्त और कोई उद्देश्य है भी नहीं; या, अगर अधिक सच बोलूं, तो शायद यह भी नहीं है।

और देखिए, यह कहानी सुनाने की बात होते ही जैसे मेरी सारी स्मृति जाग-सी उठी है। मेरे सामने मेरे पिछले जीवन के, करीब चार-पांच साल पहले के, सारे धुंधले चित्र स्पष्ट होने लगे हैं। आज मैं सोचता हूं कि मैं अपने जिस पाप की पीड़ा से व्याकुल हूं, उसका प्रायश्चित्त, सिर्फ मेरी एक सहमति से हो सकता था। लेकिन उस समय मैंने केवल अपने स्वार्थवश ही इस ओर ध्यान नहीं दिया।

कभी-कभी मैं यह भी सोचता हूं कि यदि उस समय मैं ऐसी निष्ठुरता न करता, तो आज कितना सुखी होता । लेकिन नहीं, अब शायद उस सुख की ठीक कल्पना तक कर सकना मेरे लिए संभव ही नहीं है । अब तो मेरी आंखों के सामने केवल उसकी तस्वीर ही नाचा करती है । कभी करुणा से भरा हुआ मुखड़ा लिए और कभी प्रसन्नता से मुस्कराते हुए चेहरे को लिए वह मुझे अपनी ओर निहारती हुई दिखाई देती है ।

तो इससे पहले कि मैं अपनी यह कहानी शुरू करूं, मैं आपको यह बता देना चाहता हूं कि मैं एक भावुक, सहृदय और सुकुमार भावनाओंवाला नवयुवक हूं । मैंने रीता को सदैव अपने हृदय में बिठाकर रखा है, उसकी एक-एक बात, उसके एक-एक अनुरोध की पूर्ति के लिए अपनी सारी सामर्थ्य से हर समय तैयार रहा हूं । मैं यह नहीं कह सकता कि उसके प्रति मेरी जो भावनाएं हैं, उनसे और उनकी गहराइयों से रीता परिचित थी या नहीं, लेकिन इतना मैं अवश्य कह सकता हूं कि उस समय यदि कभी वह मुझसे प्राण देने को भी कहती, तो मैं बिना किसी हिचक के तैयार हो जाता । मैं एक साधारण युवक हूं । बड़ी-बड़ी बातों और बौद्धिकता के प्रश्नों का विवाद मुझे कोई ऐसी चीज़ नहीं मालूम होती कि उसमें पड़ूं । मैं बौद्धिक हूं भी नहीं, जो जीवन के उच्चतर उद्देश्यों तक ही सामर्थ्य को लगाए रहूं । मेरे लिए उस समय प्रेम ही सब कुछ था, वह प्रेम जिसकी पात्र रीता थी ।

आप सोचेंगे कि मैं ये सब बातें आपसे क्यों कह रहा हूं ; सिर्फ इसलिए कि इनकी पृष्ठभूमि में ही आप मेरी इस आपबीती को अच्छी तरह समझ सकेंगे । साथ ही साथ, आप यह भी ध्यान रखें कि मैं यह अपनी सफाई में कतई नहीं कह रहा हूं । ऐसा हरगिज़ नहीं है, यद्यपि मेरा विचार है कि आपको मेरी इस गाथा से यही ध्वनि अनेक स्थलों

पर निःसृत होती हुई प्रतीत होगी। मैं फिर कहता हूं कि मैं यह चाहता हूं कि आप मुझे धिक्कारें—मेरे पाप के लिए, मेरी स्वार्थपरता के लिए और मेरी सारी करनी के लिए, जिससे कि मैं यह अनुभव और भी तीव्रता से करूं कि मैं पापी हूं और अपने पापों का फल भोग रहा हूं। शायद ऐसा होने पर मुझे कुछ संतोष होगा। क्योंकि मैं अपने रीता के प्रति अपराध की इस प्रकार से स्पष्ट घोषणा कर चुका होऊंगा।

मैंने रीता के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया, वही शायद इस दुनिया में करने के लिए लोग मजबूर हो जाते हैं। बहुत चाहते हुए भी मैं उसे अपना न सका, क्योंकि वैसा ही करने के लिए मेरी स्वार्थी बुद्धि ने मुझे विवश किया। लेकिन फिर भी मेरा यह विचार है कि यदि आप इस सारी बात पर ठंडे दिल से गौर करेंगे तो आपको भी इसी नतीजे पर आना पड़ेगा। आप भी यह सोच सकेंगे कि काफी सीमा तक मैं निर्दोष हूं, और कभी-कभी मुझे भी ऐसा ही भ्रम होता है। लेकिन चूंकि मैं अपनी कमज़ोरियों से आपकी या किसी भी दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा अधिक परिचित हूं, इसके अतिरिक्त मैं अपनी असफलताओं की कहानी की भी पूर्ण और चेतन अवगति रखता हूं, इसलिए यह भ्रम मेरे मन में ज़्यादा देर तक ठहर नहीं पाता।

अक्सर मैं भावावेग में अपनी रीता को संबोधित भी करता हूं, जो अब स्वर्गीया है। उसके प्रति मेरी भावनाएं बहुत ऊंची हैं। मैं कवि नहीं हूं। न ही मैंने कभी कविता की है। लेकिन मैं रीता के प्रति अपने हृदय के उद्गारों को कवित्वपूर्ण समझने का भ्रम करता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि रीता मेरे इस अंधकारमय जीवन की एकमात्र ज्योति थी। उसके वियोग में मेरा हृदय जिस करुण स्वर से पुकार कर रहा है, मैं उसे रोकने में अपने-आपको सर्वथा असमर्थ पाता हूं। मेरा पुरुषत्व आज अपने ही हृदय में प्रज्वलित अग्नि

को बुझाने में असफल सिद्ध हो रहा है। रीता, मैं तुमसे बहुत कुछ कहना चाहता हूं, बहुत कुछ बताना चाहता हूं, बहुत कुछ स्पष्ट करना चाहता हूं, लेकिन जाने क्यों, जैसेही मुझे तुम्हारे साक्षात्कार की अनुभूति होती है, मैं कुछ भी बोल नहीं पाता हूं।

पर इतना मैं तुमसे अवश्य कहना चाहता हूं कि यदि आज तुम जीवित होतीं, चाहे जहां और जैसी भी होतीं, तो मैं तुम्हें किसी न किसी माध्यम से अपने अंतर की उन गहराइयों और सीमाओं से अवश्य अवगत करता, यह अनुभूति ही मेरे लिए हार्दिक संतोष का विषय होती कि तुम उनसे अपरिचित नहीं हो। मैं तुम्हें और कुछ नहीं तो एक पत्र लिखकर ही सदैव के लिए अपने हृदय पर पत्थर रख लेता। मैं शायद उसके बाद ईमानदारी से कोई ऐसी भी इच्छा नहीं रखता, जो जीवन के प्रति किसी प्रकार की मोह की भावना रखता होता। तुम मुझे कभी-कभी पागल समझती थीं, लेकिन साथ ही शायद तुम इसकी वजह भी जानती थीं, यानी तुम यह समझती थीं कि वह तुम ही थीं कि जिसने मुझे उस तरह से पागल बना रखा था। इसलिए रीता, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता था और अब भी यह बात मुझे साल रही है।

मैं भी क्या कहते-कहते क्या कहने लगा, कहां भटक गया। लेकिन अब जब भटका ही हूं तो इतना आपको और बता दूं कि प्रेम के विषय में मेरी अपनी कुछ धारणा है। मैं फिर एक बार यह कहता हूं कि मैं किसी तरह का कोई दावा नहीं कर रहा, लेकिन जहां तक प्रेम और प्रेम की भावना का सम्बन्ध है, यह सत्य है, और मेरा स्वयं का भी अनुमान है कि पुरुष का प्यार प्रायः झूठा नहीं होता। उसमें एक तरह की ईमानदारी होती है। इसके अतिरिक्त उसमें जो सबसे बड़ी बात होती है, वह यह कि उसका निश्चय कभी भी कमज़ोर नींव पर अवलंबित नहीं होता। एक पुरुष जो कुछ भी

सोचता या करता है, वह उसकी बुद्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण होता है। एक स्त्री की तरह अशक्त इच्छाओं का मात्र अस्थायी और दुर्बल निश्चय पुरुष का गुण नहीं होता। वह जो कुछ भी करता है, दृढ़ता-पूर्वक करता है। वह कभी भी एक नारी की भांति केवल आवेगों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने का दुस्साहस नहीं करता। इसलिए मैं यह अनुमान कर सकता हूं कि आज के युग में वे लोग एक भ्रांति के शिकार हैं, जो यह समझते हैं कि पुरुष केवल विनोद के लिए ही सदैव प्रेम का स्वांग रचता है। मैं समझता हूं कि ईमानदार पुरुष का प्रेम प्रायः झूठा नहीं होता।

खैर, छोड़िए इन बातों को। यह एक तरह की वाहियात बहस का विषय है और इनके बारे में ज़ोरदार और घुमावदार शब्दावली में बहस करना कोई बहुत ज़्यादा ठीक बात नहीं है। अगर खींच-खांचकर इस सारी बहस से कुछ साबित भी कर दिया गया, तो भी उसका कोई खास नतीजा नहीं निकलना है। इसके अलावा जो सबसे बड़ी बात है, वह यह है कि यहां मेरा उद्देश्य भी किसी प्रकार की भावना या सिद्धान्त का विवेचन करना या उसके विषय में अपनी राय ज़ाहिर करना नहीं है। मैं तो सिर्फ अपनी वह आपबीती ही आपको सुनाना चाहता हूं, जिसकी चर्चा होते-होते ये इतनी सब बातें भी कह डाली गईं। मेरी कथा मेरे अन्तर को व्याकुल कर रही है और बरबस ही मेरी ज़बान पर आकर फूट पड़ना चाहती है। उसीको कहना चाहने के लिए मैं इतनी इधर-उधर की बातें आपसे कह गया, जिन्हें कहना यहां मेरा उद्देश्य नहीं है। मेरा अंदाज़ है कि आप भी संभवतः इस सारी चर्चा से उकता गए होंगे।

लीजिए, अब मैं इस चर्चा को यहीं छोड़ता हूं और आपको अपनी आपबीती से अवगत कराता हूं, उस आपबीती से जिसका सम्बन्ध रीता से है—उस रीता से, जिसे मैंने कभी प्यार किया था।

दो

मैं उन दिनों एम० एस-सी० के प्रथम वर्ष में प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ता था। मेरे पिता की आर्थिक स्थिति बहुत असंतोषजनक थी। इसलिए मुझे विश्वविद्यालय में टिके रहना बहुत कठिन मालूम होता था। मैंने जब हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी, तभी से मेरे पिताजी की यह राय थी कि मैं किसी दफ्तर में बाबूगीरी ढूंढ़ने की कोशिश करूं। मेरे पिताजी भी यदि मुझे पढ़ाने में असमर्थ थे तो थे, परन्तु जहां तक बाबूगीरी दिलाने का सम्बन्ध था, वह इस काम में मेरी काफी मदद कर सकते थे।

मैं उस समय अपने-आपको अपने दूसरे सहपाठियों की अपेक्षा कुछ भिन्न समझता था। मेरा अनुमान है कि मैं काफी महत्त्वाकांक्षी था। यद्यपि मेरी महत्त्वाकांक्षा का स्वरूप बिलकुल स्पष्ट नहीं था। मैं दृढ़ रूप से यह समझता था कि जो कुछ सब दूसरे हैं, कम से कम वह मैं निश्चित रूप से नहीं हूं। लेकिन मैं उनसे किन मायनों में किस तरह से भिन्न हूं, यह मैं नहीं समझ पाता था। इसलिए मैंने उस समय अपने पिताजी की सहायता से किसी दफ्तर में बाबूगीरी करना अस्वीकार कर दिया। मेरे पिताजी ने भी मेरे आगे पढ़ने का विरोध नहीं किया। यह उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मुझे आगे पढ़ाने और उच्च शिक्षा दिलाने की बात उनके बूते के बाहर है। इसलिए

यदि मैं नौकरी करके उनकी मदद नहीं कर सकता, तो आगे पढ़ूं, पर उसमें वे किसी भी प्रकार से मेरी कोई सहायता नहीं कर सकते।

पिताजी की यह स्पष्टवादिता आज मुझे बड़ी निर्मम मालूम होती है। लेकिन इसके लिए उन्हींको क्यों दोष दिया जाए। यह तो एक परम्परागत मनावृत्ति थी। शायद पीढ़ियों से नौकरी और जी-हुज़ूरी करते-करते हम लोगों के खून से उस चेतना का लोप हो गया था, जो आदमी की सृजनशील और क्रियात्मक संभावनाओं में वृद्धि करती है। लेकिन यह सब मैं आज सोचता हूं। उस समय तो मुझे एक धुन-सी थी कि पढ़ना इतना तुच्छ नहीं है जिसको पचास-साठ रुपये माहवार की बाबूगीरी के लिए हमेशा के लिए तिलांजलि दे दी जाए। इसलिए मैंने पिताजी से एक प्रकार का समझौता-सा कर लिया और किसी तरह इधर-उधर छोटे-मोटे काम करके अपनी पढ़ाई का प्रबन्ध करने लगा।

बी० एस-सी० तक पहुंचने तक यही हालत रही। लेकिन जब मैंने एम० एस-सी० में प्रवेश लिया, तब स्थिति दूभर हो गई। अब मुझे ऐसा लगने लगा जैसे आगे पढ़ाई की गाड़ी चलना कठिन है। क्योंकि अब थोड़े-से रुपये के लिए धनियों के लड़कों के साथ मगज़ मारना या कोई और छोटा-मोटा काम करके फीस जुटाना मेरे लिए असंभव हो गया। बड़ी कठिनाई से सौ रुपयों का प्रबन्ध करके मैंने विश्वविद्यालय में ही प्रवेश पाया था। फीस की दूसरी किश्त न जमा कर सकने के कारण मेरा नाम रजिस्टर से काट दिया गया था। लेकिन अपने कृपालु प्रोफेसर की कृपा से मैं लेक्चर्स अटेंड करता रहा। उन प्रोफेसर को मुझसे विशेष स्नेह था और उन्हें यह आशा थी कि किसी न किसी प्रकार से मैं रुपये का प्रबन्ध करके फीस जमा कर ही दूंगा। मतलब यह है कि मैं तब विश्वविद्यालय

का बोनाफाइड विद्यार्थी नहीं था। और इससे भी अधिक बात यह थी कि अब मेरी मनोवृत्ति में एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन-सा दिखाई दे रहा था। अब मैं अपने-आपमें कुछ ऐसा अनुभव कर रहा था कि मुझे विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा से अरुचि हो गई थी और मैं उसकी दिशा में कतई आशान्वित नहीं था।

मेरी मनोवृत्ति में इस अप्रत्याशित और विचित्र परिवर्तन का कारण संभवत: यह था कि मैं यह देख पा रहा था कि जिस तरह से मैं अपनी ज़िंदगी आगे खिसका रहा हूं और पढ़ाई में आस्था बनाए हुए हूं, यह कोई बहुत दूरदर्शिता की बात नहीं है। संभवत: मैं यह इसलिए सोचता था क्योंकि मुझमें अब यह धारणा विश्वास जमाती जा रही थी कि व्यावहारिक सफलता का शिक्षा या विवेक से कोई बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। इसके साथ ही मैं यह भी देख रहा था कि अगर मैंने फीस की दूसरी किश्त का प्रबन्ध कर भी लिया तो भी दो साल तक उसी तरह से प्रबंध करते रह सकना मेरे लिए किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। इसलिए मैं पढ़ने के साथ ही किसी नौकरी की तलाश में भी रहने लगा और मैंने फैसला कर लिया कि अगर कोई तुक का काम मिल गया तो मैं पढ़ाई छोड़ भी दूंगा।

अपने पिताजी की राय के अनुसार मैं एक दिन कामदिलाऊ दफ्तर में अपने प्रमाणपत्र आदि लेकर गया। वहां मुझे दिन-भर लग गया। उम्मीदवारों की पंक्ति में लगभग दो घंटे तक एक पैर से खड़े रहने के बाद मेरा नम्बर आया और अपना रजिस्ट्रेशन कराने में सफल हो सका। लौटते-लौटते शाम उतरने लगी थी और मैं अपने-आपमें एक अजीब-सी झुंझलाहट-भरी पस्ती का अनुभव कर रहा था। घर पहुंचते-पहुंचते पांच बज चुके थे और मैं अपने सिर में हल्का-हल्का दर्द महसूस कर रहा था।

मेरा मकान इलाहाबाद के एक घने बसे हुए मुहल्ले में है। घर दोमंज़िला है और मैं उसमें ऊपर छत पर बने हुए अकेले कमरे में रहता हूं। आसपास के मकानों की छतें आपस में मिली हुई हैं। इसीलिए वहां बच्चे पतंग उड़ाते हुए एक छत से दूसरी छत पर कूदकर करीब दस-पन्द्रह घरों तक फांद जाते थे। और मेरी छत के चारों तरफ बनी हुई मुंडेरों के काफी नीची होने के कारण बच्चों को इधर से उधर जाने-आने में ज़रा भी परेशानी नहीं होती थी। इसके अलावा, कहीं-कहीं से मुंडेर टूट भी गई थी, जिससे एक छत से दूसरी छत एक ही मकान की दोनों छतों की तरह से मिल गई थी।

मैं काफी थका हुआ था, इसलिए छत पर कुछ देर टहलने के बाद एक मुंडेर पर दोनों हाथों के सहारे टिककर झांकने लगा और दूसरी ओर की छत पर खेलते बच्चों को देखते हुए तबियत बहलाने लगा। करीब पांच-सात मिनट तक मैं योंही खड़ा रहा और अनुभव करने लगा कि हवा धीरे-धीरे काफी सर्द होती जा रही है। पड़ोस की छत पर कुछ बच्चे खेल रहे थे और कभी-कभी लड़ भी पड़ते थे। एकाएक मेरा ध्यान बंटा जब मैंने देखा कि उस छत के पड़ोसवाले मकान से एक सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की 'मुन्नू-मुन्नू' पुकारती हुई छत पर आ गई। मुन्नू उसे अपनी ओर लपकी आते देखकर पकड़े जाने की आशंका से इधर-उधर भागकर बचने की कोशिश करने लगा और वह उसके पीछे दौड़ती हुई उसे पकड़ने की। लेकिन इस भाग-दौड़ में थोड़ी ही देर के तजरबे के बाद मुन्नू ने अपने-आपको कमज़ोर महसूस किया और अपनी छत से मिली हुई दूसरी छत पर, यानी ठीक मेरे पड़ोस की छत पर आकर मुंडेर के पास खड़ा हो गया और अपने दोनों हाथों को ऊपर बढ़ाकर मुझे मेरे हाथों में देने की कोशिश करता हुआ चिल्लाने लगा, "रमेश चाचा, रमेश चाचा!"

यह सब कुछ पलक मारते ही होने पर भी मैं उसका मतलब समझ गया और मैंने मुन्नू को दोनों हाथों से पकड़कर उठा लिया और अपनी छत पर कुदा लिया। अब तक उस लड़की ने शायद मुझे नहीं देखा था। वह अपनी उसी तेज़ी में जैसेही मुन्नू का पीछा करती हुई इस छत पर आई और मैंने मुन्नू को इधर खींचा, वैसे ही उसकी आंखें मुझसे मिलीं। वह एकदम से लजा-सी गई और पल्ले से सिर ढकता हुई दौड़कर वापस चली गई। मुन्नू न पकड़े जा सकने की खुशी में मेरी छत पर ताली बजा-बजाकर उछलने लगा।

मुझे ऐसा लगा जैसे एक चंचल हरिणी छलांगें भरती हुई सहसा अदृश्य हो गई हो। मैं अपने उन पड़ोसियों को बचपन से ही जानता था। उस परिवार में एक सज्जन मेरी ही जाति के रहते थे। उनके परिवार में कुल चार व्यक्ति थे—वे स्वयं, उनकी पत्नी और एक छोटी लड़की तथा एक लड़का मुन्नू। इस लड़की को तो उनके यहां मैं आज ही देख रहा था पहली बार। मैं समझ गया कि शायद वह उनके भाई की लड़की है, जो उन दिनों उनके यहां आए हुए थे। मेरी माताजी ने ही शायद मुझे बताया था कि उनके यहां कोई मेहमान आए हुए हैं। अपनी कल्पना में ही यह अनुमान लगाकर मेरा कौतूहल शांत हो गया। लेकिन दूसरे ही क्षण मेरी निगाह अनायास ही जो फिर उस छत की ओर गई तो मैंने देखा कि छत पर दरवाज़े की ओट में खड़ी वह लड़की मुझे एकटक देख रही थी। मेरे उधर देखते ही वह झट से अलग हट गई। यह देखकर मुझे कुछ हंसी-सी आ गई और मैं वहां से आकर अपने कमरे में पलंग पर लेट गया।

यहां मैं आपको एक बात बता दूं। मैं यह मानता हूं कि पुरुष और नारी में पारस्परिक आकर्षण की एक प्रबल भावना होती है, जो युवावस्था में विशेष रूप से हावी रहती है। मैं यह नहीं कहता कि मैं उस समय इस भावना से एकदम मुक्त था। लेकिन हां, इतना

अवश्य है कि यह मेरी कुछ प्रकृति-सी बन गई थी कि मैं किसी भी लड़की के सम्पर्क में आने से कुछ झेंपता था। परिस्थितियों ने मुझे असमय ही कुछ ऐसा तोड़कर रख दिया था कि इस प्रकार की अनुभूतियां सो सी गई थीं। मेरे अनेक सहपाठी जब लड़कियों की चर्चा करते थे और ऐसा करते समय एक प्रकार के आनन्द का अनुभव करते थे, तो मैं कुछ अनमना-सा अपनी मित्र-मंडली से अलग बैठा रहता था, मानो मैं उनसे किसी भी प्रकार से सम्बन्धित न होऊं, मानो मैं उनसे सर्वथा अपरिचित होऊं। इस कोरे वार्तालाप और हाहा-हूहू में मुझे एक तरह का खोखलापन और खिसियाहट भरी मालूम होती थी।

मैं यह जानता और मानता हूं कि प्रत्येक पुरुष के जीवन में, विशेष रूप से युवावस्था में कुछ ऐसे अवसर आते हैं, जब कुछ युवतियां उनसे बातचीत का अवसर खोजती हैं और ऐसा अवसर पाने पर कुछ लजाते हुए उसका उपयोग भी करती हैं। यह बात उन युवकों के सिलसिले में सही है, जो स्वभाव से ही बहुत लज्जाशील और संकोची हैं ; उनके लिए नहीं, जो स्वयं से ही ऐसे अवसरों की केवल ताक में ही नहीं रहते, बल्कि किसी न किसी प्रकार से उन्हें पा ही लेते हैं। कहने का मतलब यह है कि जो युवक काफी संकोची भी होते हैं, उन्हें भी बहुधा यह अनुभव होता है कि कुछ लड़कियां उनके संपर्क में आना चाहती हैं और साथ ही इसके लिए उन्हें किन्हीं विशेष या साधारण अवसरों पर अपनी हरकतों से अपनी ओर आकर्षित करने की भी चेष्टा करती हैं। और मैं आपको बताऊं कि मुझे भी ऐसे कई अनुभव हुए थे जब मुझे इस प्रकार के मौकों से गुज़रना पड़ा था। मैं ठीक जानता हूं कि बिरादरी में शादी-विवाह या अन्य अवसरों पर तथा विश्वविद्यालय में भी ऐसा अक्सर हुआ था, जब कुछ लड़कियों ने मुझसे किसी न किसी बहाने से कुछ

बात करना चाहा था। परन्तु मैं यह नहीं कहता कि इस साधारण प्रयत्न के पीछे उनमें कोई गहरा आकर्षण या कोई विशेषता थी। यानी काफी हद तक यह चेष्टा सिर्फ साधारण शिष्टाचार की बातों तक ही सीमित रहती थी और उसीके साथ ही इसकी समाप्ति भी हो जाती थी। परन्तु कुछ तो अपने अहंभाव के कारण और कुछ परिस्थितिवश ऐसा हुआ था कि मैं इन अवसरों पर कतरा गया था, यद्यपि मैंने इसके बाद ही फिर यह अनुभव किया था कि मेरा यह व्यवहार न केवल शुष्क और अनुचित था, बल्कि शिष्टाचार के साधारण नियमों तक के अनुकूल नहीं पड़ता था।

तो इसी तरह जब मैंने इस बार फिर से एक सर्वथा अपरिचित लड़की को अपनी ओर एकटक देखते पाया, तो मुझे सिर्फ उसकी इस बात पर हंसी ही आई। मेरे मन में उसके इस व्यवहार से कोई आकर्षण या विशेष कौतूहल नहीं उत्पन्न हुआ। और बहुत संभव है कि इस दिन के बाद भी यह बात बिलकुल आई-गई हो जाती और इस तरह से यह किस्सा वहीं खत्म हो जाता, जैसाकि अब तक प्रायः इस तरह के मामलों में होता रहता था। और अगर सौभाग्यवश ऐसा हो जाता तो सचमुच मुझे अपने उस भयंकर दुर्भाग्य का सामना न करना पड़ता और मैं यहां उस कहानी को सुनाने के लिए बैठा न होता। इसके अलावा, यदि मेरे जीवन में उस समय वह मोड़ न आया होता, तो यह निश्चित है कि मेरी जीवनधारा ज़रूर किसी न किसी दूसरी दिशा में प्रवाहित हुई होती।

लेकिन खैर, उस वक्त यह हुआ कि दूसरे दिन मैं जब हमेशा की तरह साढ़े सात-आठ बजे के करीब सोकर उठा और जमुहाइयां लेता हुआ कमरे के बाहर निकला, तो मैंने देखा कि अपनी छत पर खड़ी हुई वह लड़की कल की तरह ही आड़ में खड़ी हुई एकटक मेरी ओर निहार रही है। मुझे लगा, जैसे वह मेरे कमरे के दरवाज़े के खुलने

और मेरे बाहर निकलने का इंतज़ार काफी देर से कर रही हो। मुझे देखते ही उसके गोरे चेहरे पर हंसी की एक हल्की-सी लहर दौड़ी और वह सलज्ज भाव से सामने से हट गई। मैं भी उधर ज़्यादा देर तक न खड़ा रहा। उसके इस व्यवहार पर एक तुच्छ-सी उपेक्षा की हंसी हंसकर रह गया; हालांकि मैं बराबर यही सोचता रहा कि आखिरकार यह सब इस तरह क्यों ?

और यहीं तक नहीं, उस दिन भी जब मैं रोज़ की तरह ग्यारह बजे के करीब विश्वविद्यालय जाने के लिए तैयार होकर घर से बाहर निकला, तो मैंने देखा कि वह अपने घर के बाहरवाले कमरे में, यानी मेरे घर के ठीक सामने, फिर खड़ी थी। मुझे ऐसा लगा जैसे वह ऊपर छत पर से मेरे सारे काम देख रही थी। मेरा सोकर उठना, स्नान करने जाना, भोजन करने जाना, कपड़े बदलकर तैयार होना और फिर किताबें उठाकर नीचे आना। और मेरे नीचे आते ही वह भी शायद दौड़कर नीचे आ गई थी।

अब वह ठीक मेरे सामने खड़ी थी—मेरी राह में आंखें बिछाए। हुंह, आंखें बिछाए और मेरी राह में ! मैं फिर उपेक्षा की हंसी हंसकर रह गया और आगे बढ़ गया। गली के मोड़ पर पहुंचकर मैंने एकाएक पीछे घूमकर देखा। वह अब भी मेरी तरफ देख रही थी, उसी हसरत-भरी निगाह से। मैं आगे बढ़ गया लेकिन उसकी वह निगाह मुझे गड़ गई। क्योंकि यह सब एक बहुत नाटकीय ढंग के प्रेम की शुरुआत हो रही थी, जिसका मैं बहुत ज़्यादा कायल नहीं था।

मैं उस दिन बराबर उसी लड़की के बारे में सोचता रहा और शाम को जब घर वापस आया तो मैंने मुन्नू को अपने पास बुलाकर उससे पूछा, "मुन्नू, तुम्हारे घर कोई आया है ?"

"हां।" उसने जवाब दिया।

"कौन ?"

"ताऊजी।"

"और ?"

"ताईजी।"

"और ?"

"रीता जीजी।"

"रीता जीजी ?"

"हां, रीता जीजी।" उसने कहा, "वही, जो कल मुझे पकड़ने को दौड़ रही थीं।"

मैं चुप हो कुछ सोचने लगा। मुझको खामोश देख, वह कुछ समझता हुआ-सा बोला, "अरे, आप नहीं जानते ? वाह रमेश चाचा ! रीता जीजी लखनऊ से आई हैं। ताऊजी कहते हैं कि यहां उनका ब्याह करेंगे।"

"रीता जीजी तुमसे भी बोलती हैं ?"

"हां, बोलती क्यों नहीं हैं ?"

"क्या बात करती हैं तुमसे ?"

"मुझसे पूछती हैं कि तुम्हारे ये रमेश चाचा कौन हैं, क्या करते हैं, कहां पढ़ते हैं, तुम्हें प्यार करते हैं या नहीं, कभी मिठाई या टॉफी देते हैं या नहीं ?"

"तो तुम क्या जवाब देते हो ?"

"मैं कह देता हूं कि मिठाई या टॉफी तो नहीं, पर हां, जब कभी पतंग उड़ाते हैं तो मुझे पतंग की डोर ज़रूर देते हैं।"

आपके लिए यह सब सुनकर यह सोचना स्वाभाविक है कि अब शायद मैं भी धीरे-धीरे रीता के प्रति आकर्षण का अनुभव करने लगा होऊंगा और उसको लेकर किन्हीं मीठे स्वप्नों की कल्पना करने लगा होऊंगा। लेकिन नहीं। मैं यह जानकर कि आप ऐसा

सोच रहे हैं, अपने मन में सिर्फ हंसूंगा। मैं रीता के प्रति बिलकुल आकर्षण नहीं अनुभव करता था, क्योंकि मेरा अहं उस समय ऐसी किसी भी भावना को इस प्रकार से और इस रूप में स्वीकार करने में असमर्थ था। और इसीलिए मैं अपने संबंध में रीता को इतना उत्सुक देखकर भी अपने हृदय में उसके प्रति ऐसी कोई अनुभूति जगती न पा सका। बल्कि यह सब देख-सुनकर भी वैसी ही उपेक्षा की हंसी हंसकर रह गया। अधिक से अधिक यदि मैं सत्य बोलूं, तो यह कह सकता हूं कि उसके इस व्यवहार से मुझे केवल कुछ कौतूहल होता था कि ऐसा क्यों है, जो हमारे समाज में ज़रा अस्वाभाविक और नाटकीय मालूम होता है। लेकिन काश, मैं वैसा हमेशा ही सोचता रह सकता और मेरी अहंभावना की सूचक वह उपेक्षापूर्ण हंसी मेरे होंठों पर हमेशा रह सकती!

उस दिन से कुछ ऐसा होने लगा कि जब मैं अपने कमरे में होता तो बजाय इसके कि अपनी मेज़ पर बैठा या अपने पलंग पर अधलेटा कोई चीज़ लिखूं या किताब पढ़ूं, मैं छतवाले दरवाज़े के पीछे खड़ा आड़ में से सामनेवाली छत की ओर निहारा करता और हमेशा यही पाता कि वह खड़ी है और एकटक मेरी ओर, मेरे दरवाज़े की ओर देख रही है—इस आशा से कि शायद मैं कमरे के बाहर निकलूं और वह मेरी ओर देख सके, मुझे देखकर धीरे से मुस्करा सके।

और ऐसा एक-दो या चार-छः बार नहीं, हमेशा ही हुआ करता। वह बराबर अपनी छत पर खड़ी मेरी ओर ताका करती, और मैं दरवाज़े के पीछे खड़ा आड़ में से उसके चेहरे पर आते-जाते उसके भावों को पढ़ने की कोशिश किया करता। उसकी आंखों में इतनी दूर से ही झांकने का प्रयत्न किया करता। मैं देखता कि उसका रंग खूब गोरा है, उसके बाल गहरे, काले, चमकीले और लम्बे हैं, क्योंकि उसकी दो, काफी मोटी, बलखाती नागिनों-सी चोटियां सदैव

उसके नितम्बों से भी नीचे तक लटकती रहती थीं। उसके माथे पर हमेशा एक बड़ी सिन्दूरी रंग की टिकुली चमका करती थी। उसकी आंखें बड़ी और नीली थीं, जिनकी गहराइयों में प्यार का सागर लहराता जान पड़ता था। उसके गुलाबी गाल, रक्तिम अधर, और पतली छोटी नासिका में मैं उसके चेहरे की बारीकियों को पढ़ने की कोशिश करता और उसकी भावनाओं को समझने का अनुमान करता। कभी-कभी मैं अपने मन में यह सोचा करता कि इस अल्हड़ लड़की में आखिर ऐसी कौन-सी बात नहीं है, जो एक अति सुन्दर युवती में होनी चाहिए। मैं उस समय की सुन्दरी और प्रसिद्ध अभिनेत्रियों से उसके रूप की तुलना करता और एक असंबद्ध प्रकार से उसके ख्यालों में खोया रहता।

लेकिन इतना सब होने पर भी मैं अपने हृदय में रीता के प्रति कोई ऐसी भावना नहीं पाता था, जो मुझमें इस परिस्थिति में स्वभावतया जागरित होनी चाहिए थी। इसका कारण किसी सीमा तक यह हो सकता था कि मैं रीता की ओर आकर्षित होते हुए भी इस आकर्षण और अपने झुकाव को उसके सामने प्रकट नहीं करना चाहता था, क्योंकि मुझे ऐसा लगता था कि यह तो एक प्रकार से अपनी कमज़ोरी को ही ज़ाहिर करना होगा। और इससे मैं इस कारण भी कतराता था क्योंकि मेरा अहं मुझे विवश करता था कि उस हर चीज़ का विरोध किया जाए, जिसका स्वीकरण इस संसार में औसत आदमी के द्वारा किया जाता है।

उस समय मैं किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं आ सका था और इसका प्रमुख कारण यह था कि मैंने अपने हृदय में बढ़ते हुए रीता के प्रति आकर्षण को किसी व्यापक अनुभूति के संदर्भ में या उससे संबद्ध करके नहीं देखा था। आज मैं कुछ-कुछ निश्चय के साथ यह कह सकता हूं कि जहां तक नारी और उससे संबंधित काम-भावना

का संबंध है, वह चाहे जिस रूप में भी हो, बौद्धिक दृष्टिकोण से उसकी आवश्यकता उतनी ही अनिवार्य होती है, जितनी कि हो सकती है ; लेकिन यह सर्वथा असंबद्ध और अनर्गल बात होगी कि ऐसी आड़ में उसकी किसी कृत्रिम मर्यादा की योजना की जाए। अंततः, प्रेम का संबंध हृदय में स्थित एक भावना से होता है और उसकी संभावनाएं भी उसीकी सामर्थ्य से निर्देशित होती हैं।

तो इस प्रकार से मैं अनचाहे ही रीता के प्रति गहरे आकर्षण में पड़ता चला गया।

तीन

ऐसी ही अनिश्चयता की स्थिति में लगभग दो महीने बीत गए। इस बीच मैं एक सप्ताह के लिए कलकत्ता भी गया था और वहां से लौटकर मैंने उसे और भी व्यग्रता से अपनी ओर निहारते पाया था। लेकिन यह एक आश्चर्य की ही बात थी कि अब तक हम दोनों में कभी कोई सीधी बातचीत या इशारा नहीं हुआ था। हम लोग अपना काम करते थे, लेकिन बनावटीपन से और निश्चय ही एक-दूसरे को दिखाने के लिए। किन्तु प्रकट में हम ऐसा दिखाते थे कि जैसे हमें इसकी कोई खबर या दिलचस्पी न हो। और ऐसे ही दिन गुज़रते-गुज़रते किस प्रकार से हम दोनों का सीधा संपर्क स्थापित हुआ, तथा उसके बाद की भी अन्य अनेक घटनाओं का परिचय देने के लिए मैं अपनी डायरी के सत्रह जनवरी से लेकर चौदह फरवरी तक के अंश ज्यों के त्यों आपको सुना रहा हूं :

सत्रह जनवरी—

आज भी मैं जब सवेरे सोकर उठा तो कमरे का दरवाज़ा खोलते ही मैंने रीता को अपनी छत पर खड़े, वैसे ही हसरत-भरी निगाह से अपनी ओर ताकते पाया। लेकिन आज उसके चेहरे पर मुझे रोज़ जैसा भाव नहीं दिखाई दिया, जो यह बुझाता था, जैसे वह मेरी राह देखती न खड़ी हो, योंही अपनी छत पर खड़ी हो और उगते

हुए सूरज या पेड़ पर चहचहाती चिड़ियों को देख रही हो। आज उसके चेहरे पर मुझे एक प्रकार की निश्चयात्मक भावना लक्षित हुई, मानो वह यह कह रही हो कि अब बहुत दिन यों ताका-ताकी हो चुकी। अब तक उसने मुझे बहुत-से मौके दिए, लेकिन अब वह स्वयं ही कोई 'इनीशियेटिव' लेने का[1] निश्चय कर चुकी है। उसके चेहरे पर यह अनुमान झलकता था कि अब तक तो हम दोनों को एक-दूसरे के प्रति अपना भाव ईमानदारी और स्पष्टता से प्रकट ही कर देना चाहिए था; और जहां तक उसका सवाल है, वह इसके लिए तैयार भी मालूम होती थी।

मैं आज यह नवीनता देखकर कुछ आश्चर्यचकित-सा होकर उसकी ओर अजान भाव से ताकने लगा कि बात वास्तव में कुछ ऐसी ही है या मुझे खुमारी के कारण कुछ ऐसा भ्रम हो रहा है। लेकिन नहीं, वह मेरा भ्रम नहीं था। क्योंकि करीब एक मिनट तक मैं उसकी ओर अपलक दृष्टि से देखता रहा—पहली बार प्रकट रूप में इतनी देर तक—और मैंने देखा कि वह मुझे सिर्फ ताक ही नहीं रही है, बल्कि ऐसा करने के साथ ही धीरे-धीरे मुस्कराती भी जा रही है। उसे यों मुस्कराते देखकर मैं भी सहज भाव से धीरे से मुस्करा दिया। और फिर मैंने दूसरे ही पल देखा कि वह कुछ लजाकर दरवाज़े की ओट में हो गई।

यह पहला अवसर था, जब हम दोनों ने इस प्रकार से प्रकट रूप में अपनी दृष्टि मिलाई और मुस्कराए।

दोपहर को युनिवर्सिटी जाते समय जब मैं भोजन करके बाहर निकलने लगा तो मैंने देखा कि वह ऊपर छत पर खड़ी उसी प्रकार से मुझे ही देख रही थी। नीचे आकर मैंने पान लिए, लेकिन रोज़

१. पहल करने का

की तरह खाए नहीं, बल्कि उसी प्रकार से हाथ में ही लिए रहा। इसलिए जब मैं घर से बाहर निकला, तो मैं पान हाथ में कुछ इस ढंग से पकड़े था कि रीता उन्हें अवश्य ही देख लेती। मैं इसलिए ऐसा कर रहा था क्योंकि मैं मन में यह निश्चय कर चुका था यदि रीता नीचे दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई होगी, तो मैं अवश्य ही उसे दे दूंगा।

इस प्रकार से जब मैं नीचे पहुंचा, तो अपनी आशा के अनुरूप ही मैंने उसे वहां खड़े भी पाया। लेकिन इससे पहले कि मैं हाथ उठाकर उसे पान देता, मैं कुछ झिझक-सी अनुभव करने लगा। शायद अपनी स्वाभाविक प्रकृति को मैं इस अवसर पर भी न झुका सका था। और मैं आज भी रोज़ की तरह आगे बढ़ गया होता, लेकिन इसी अवसर पर रीता ने स्वयं आगे बढ़कर अपने हाथ से इशारा करते हुए मुस्कराकर पान मांगे और मेरे हाथ आगे बढ़ाने पर एक बार इधर-उधर देखकर गली के सन्नाटे में झटके के साथ अपना हाथ बढ़ाकर दोनों पान ले लिए। मैं उसे एक पान देना चाहता था, लेकिन इस वक्त नफासत और तकल्लुफ के लिए ज़्यादा गुंजाइश नहीं थी। फिर भी उसके दोनों पान ले लेने पर मैं झेंप गया और आगे बढ़ने को हुआ कि उसने हाथ उठाकर निषेध करते हुए कुछ आगे आकर एक पान मुझे लौटा दिया, ज़बरदस्ती। ऐसा करते समय उसकी और मेरी उंगलियां आपस में छू गईं और हम दोनों ने समान रूप से कुछ अजीब-सा अनुभव किया।

शाम को युनिवर्सिटी से वापस आकर मैं छत पर टहल रहा था और रह-रहकर उसकी छत पर एक निगाह देख लेता था। मुझे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। जैसेही उसने जाना कि मैं वापस आ चुका हूं, वह तुरन्त ही ऊपर आई। बिना किसी

कारण के अब हम लोगों का पारस्परिक संकोच बहुत कुछ कम हो चुका था। मैं हाथ में एक संतरा लिए हुए था। कुछ आपसी इशारों के बाद मैंने उसे वह संतरा दिखाया और ले जाने का संकेत किया। वह हल्के पैरों से चलती हुई दूसरी छत पर आई और फिर मेरे सामने आकर दीवार के उस ओर खड़ी हो गई। वहां पर हम लोगों के कंधे तक या उससे भी ज़रा ऊपर तक दीवार थी। मैं कुछ एड़ी पर खड़ा हो गया और एक हाथ बढ़ाकर उसे संतरा पकड़ा दिया। चाहा कि उसका हाथ पकड़ लूं, लेकिन वैसा नहीं किया। हां, उसने इस बीच ज़रूर एक बार अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से एक गहरी, नशीली चितवन मेरे ऊपर डाली।

"तुम्हारा नाम क्या है ?" मैंने धीरे से पूछा।

"रीता।" उसने सिर झुकाकर उत्तर दिया।

मैं चुप हो गया और एक विचित्र-सी अनुभूति अपने में जगती पाने लगा।

"और आपका ?" सहसा उसने आधी आंख मेरी ओर उठाकर पूछा।

उसकी बात का जवाब देने से पहले ही मैं वहां से हट आया। वह खुली हुई छत थी और वहां पर ज़्यादा देर तक खड़े रहना भयप्रद लगता था।

यह हमारे प्यार का पहला दिन था।

अठारह जनवरी—

आज सवेरे जागने पर मैंने कुछ उत्सुकता से दरवाज़े खोले। देखा, वह सामने खड़ी है। मुझे संतोष हुआ। मैंने गौर से देखने की कोशिश की—वही मुस्कराहट, वही ताज़गी, वही कौमार्य और अछूते यौवन का परिचय देनेवाले भाव। मैं उसे अभी आंख-भर देख भी न पाया था कि वह नीचे चली गई। शायद किसीने आवाज़ देकर

उसे बुलाया था। मैं वहीं रहा और उसके दुबारा आने की प्रतीक्षा करने लगा। वह आई, थोड़ी ही देर बाद। इस बार वह अपने हाथ में चाय का प्याला संभाले हुए थी। एक बार उसने प्याला आगे बढ़ाकर मुझे दिखाया और इशारे से पूछा कि पीजिएगा ? और फिर धीरे-धीरे चाय पीने लगी। बीच-बीच में वह रह-रहकर हंस देती थी, मानो मुझे अपनी तरफ घूरते देखकर पूछना चाहती हो कि ऐसे क्या ताक रहे हैं।

कुछ देर बाद माताजी ने मुझे पुकारा और मैं भी नीचे चाय पीने चला गया।

आज दोपहर को युनिवर्सिटी जाते समय मैंने पान उसके हाथ में न देकर एक कागज़ में लपेटकर उसकी ओर फेंक दिया। फिर मैं आगे बढ़ गया था कि कान में एक हल्की-सी आवाज़ पड़ी। मुड़कर देखा, वह बहुत धीमी आवाज़ में पूछ रही थी, "कितने बजे आइएगा ?"

मैंने उंगलियां उठाकर इशारे से उसे जवाब दिया कि दो बजे, और मैं चला गया।

शाम को जब मैं लौटकर घर आया, तब वह नहीं थी। काफी देर तक फिज़ूल इन्तज़ार करने के बाद दूसरे लोगों की बातचीत से मालूम हुआ कि उनका सारा खानदान कुछ कपड़ा वगैरह खरीदने के लिए बाज़ार गया हुआ है। फिर मैं खिन्न-भाव से आकर कमरे में बैठ गया, पर अधिक देर तक न बैठ सका। बड़ा अनमनापन-सा मालूम हो रहा था। इसलिए मैं उठकर फिर बाहर चला गया और जान-बूझकर इधर-उधर घूमता-फिरता रहा, या दोस्तों से गप लड़ाता रहा। रात को नौ बजे के करीब लौटने पर मैंने उनके घर

में बाहर की बत्ती जली देखी। अंदर कमरे में कुछ लोगों की बात-चीत सुनाई पड़ रही थी। दरवाज़ा बन्द था।

कुछ देर तक बाहर खड़े रहकर मैंने बहुत धीरे से सीटी बजाई। मेरा अनुमान ठीक निकला। उसने खांसकर उत्तर दिया। लेकिन शायद कुछ मजबूरी थी। उस वक्त भेंट नहीं हो सकती थी। लेकिन कल भी तो फिर से सवेरा होगा।

उन्नीस जनवरी—

आज सवेरे मैंने उसे इशारे से बुलाकर उसके काले, बड़े जूड़े में एक ताज़े, लाल गुलाब का खुशबूदार फूल लगा दिया। फूल लगाते समय मैंने देखा कि उसके रक्तिम अधर सिकुड़े जा रहे थे, गुलाबी गालों पर लाली आ गई थी और आंखें कुछ शरमाकर नीचे झुकी जा रही थीं।

इसके कुछ ही देर बाद मैंने उसे फिर बुलाकर एक चिट्ठी भी लिखकर उसे दी। चिट्ठी अंग्रेज़ी में थी और वह उसे पढ़ने के लिए सीधी वापस चली गई, शायद बंद कमरे में। लेकिन थोड़ी ही देर में वह फिर वापस लौट आई और बोली, "अंग्रेज़ी में नहीं, हिन्दी में लिखकर दीजिए।" अंग्रेजी अच्छी तरह से उसकी समझ में नहीं आती थी।

मैंने हंसकर चिट्ठी वापस ले ली और सन्तुष्ट हुआ। मुझे खुद भी अंग्रेज़ी ठीक से लिखनी-बोलनी नहीं आती थी। उसके कहने पर मैंने उसे एक चिट्ठी हिन्दी में लिखकर देने का वादा भी किया।

शाम को जब मैं विश्वविद्यालय से लौटा तो उसके लिए पुड़िया में कुछ केक लाया था। ऊपर बुलाकर मैंने वह पुड़िया उसके हाथ में पकड़ा दी और उसके शरमा कर सिर नीचे झुका लेने पर उंगली

से उसकी ठोड़ी को उठाकर उसका मुंह अपनी तरफ किया। उसने एक बार नज़र मिलाई और फिर झुका ली। मैंने उसके वक्ष के उतार-चढ़ाव को देखकर उसके हृदय की बढ़ती हुई धड़कनों का अनुमान लगाया।

बीस जनवरी—

इस तारीख को डायरी में कुछ नहीं लिखा है।

इक्कीस जनवरी—

आज सवेरे जब मेरे बुलाने पर रीता आई, तब मैंने देखा कि वह कुछ अजीब-सी बातें कर रही है। उसकी बातों से यह अन्दाज़ मिला कि उसके विवाह की बातचीत किसी जगह उसके मां-बाप चला रहे हैं। सवेरे वह जल्दी ही वापस चली गई। क्योंकि शायद उस वक्त भी उसके घर में नीचे कुछ इसी तरह की बातें हो रही थीं, और वह वहां जाकर उन्हें सुनना चाहती थी।

शाम को मैंने उसे फिर बुलाया, लेकिन वह नहीं आई। यद्यपि बात बहुत साधारण थी, लेकिन मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ। उस-पर हालांकि अभी मेरा किसी तरह का कोई ऐसा अधिकार नहीं था, लेकिन निकटता के कारण मैं उसपर अपना पूरा अधिकार समझने लगा था। अब भले ही यह मेरी नादानी के कारण हो या जैसे भी हो। और इसीलिए उसके न आने पर मैं कुछ रुष्ट-सा होकर बाहर चला गया।

घर से निकलने पर मैंने निश्चय किया कि काफी रात तक इधर-उधर घूमूंगा और तभी लौटूंगा, जब वह सो चुकी होगी। लेकिन कुछ ऐसा हुआ कि थोड़ी देर में मेरा यह निश्चय न जाने कहां चला गया और मैं दस-बारह मिनट बाद ही उतावली में लौट आया।
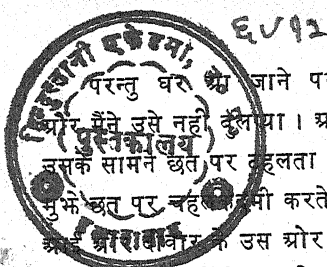
परन्तु घर आ जाने पर सहसा फिर मुझे क्रोध मालूम हुआ और मैंने उसे नहीं बुलाया। अकड़ में भूला हुआ मैं जान-बूझकर उसके सामने छत पर टहलता रहा। इस बार मैंने पाया कि वह मुझे छत पर चहलकदमी करते देखकर स्वयं ही बिना बुलाए चली आई और दीवार के उस ओर अपने स्थान पर खड़ी हो गई।

मैंने कनखियों से उसकी ओर देखा, लेकिन कुछ न बोला; न ही उसके पास गया। वह मेरी ओर ताकती रही; इस प्रतीक्षा में कि शायद मैं उसकी तरफ देखूं, कोई इशारा करूं, या उसे बुलाऊं। लेकिन जब काफी देर हो गई और मैं कुछ न बोला तो वह कुछ कातर स्वर में बोली, "आप नाराज़ हैं क्या?"

मैंने सुना और उसके निकट जाकर रूखी आवाज़ में कहा, "मैं नाराज़ भी होऊं तो तुम्हें क्या परवाह?"

और यह कहकर मैं फिर से भागता हुआ नीचे पहुंचा, ताकि उसके नीचे आने से पहले ही फिर चला जाऊं और रात में ज़रूर ही देर से लौटूंगा। मैं इस हिसाब से भागा, ताकि अगर वह कुछ बोले भी तो मैं जल्दी ही दूर चला जाऊं और उसके शब्द मेरे कानों में न पड़ें।

परन्तु गली में पहुंचकर मैंने देखा कि रीता मुझसे भी तेज़ी से चलकर नीचे आ गई है और कमरे के दरवाज़े पर खड़ी हुई मुझे देख रही है, मेरी प्रतीक्षा कर रही है।

यह देखकर एक प्रकार की ग्लानि से मेरा मन भर गया। न जाने एकदम से मन में कैसे क्या निश्चय हुआ कि मैं आगे बढ़कर गली पार कर जाने के बजाय, बिना कुछ सोचे-विचारे बाहर के कमरे के भीतर चला गया, जिसके दरवाज़े पर वह खड़ी हुई थी। यह रीता के लिए भी सर्वथा अप्रत्याशित था, इसलिए वह आश्चर्य में भरकर मुझे ताकती रह गई। मैंने पाया कि वहां कमरे में उस

समय और कोई मौजूद नहीं था। एक बार मैंने उसके विस्फारित नेत्रों को देखा और फिर मैंने उसका हाथ अपने कांपते हुए हाथ से पकड़ा और उसे निकट खींचकर अपने आलिंगन में ले लिया। वह भी चुपचाप मेरी छाती से लग गई और हम दोनों कुछ पलों तक वैसे ही खड़े हुए एक-दूसरे के दिलों की धड़कनें सुनते रहे।

इसी बीच उस कमरे के घर के भीतर खुलनेवाले दरवाज़े को ढकेलता हुआ मुन्नू 'रीता जीजी, रीता जीजी' कहता हुआ तेज़ी से भीतर घुसा और वहां मुझे और रीता को उस अवस्था में पाकर कुछ चौंका। हम दोनों झटके के साथ अलग हो गए, मुन्नू सिर्फ 'अरे, रमेश चाचा' ही कह सका था कि मैं तेज़ी से कमरे के बाहर हो गया।

बाईस जनवरी—

रीता आज दिन-भर कुछ गुमसुम-सी दिखाई दी। साथ ही वह कुछ डरी हुई भी लगती थी। शायद कल की घटना उसके माता-पिता को भी मालूम हो गई हो, और आखिर मालूम भी क्यों न हो, आखिर मुन्नू कोई डेढ़-दो वर्ष का बच्चा तो है नहीं, जो कुछ समझे ही नहीं।

इस समय मुझको रीता की हालत पर तरस आ रहा है। मैं सोच रहा हूं कि वह बेचारी अकारण ही परेशान हो रही होगी। हो सकता है कि उसके मां-बाप ने उसे भला-बुरा समझाया हो, या यह भी हो सकता है कि उसे इस हरकत के लिए डांटा-फटकारा भी हो। एक पल तक मैं सोचता हूं कि यह सब खिलवाड़ अब छोड़ना चाहिए, यह नाटक बंद करना चाहिए और अपने काम-धंधे से लगने की फिकर करनी चाहिए। लेकिन दूसरे ही पल जब मैं अपने हृदय को टटोलता हूं और पाता हूं कि वह उसमें काफी जगह बना चुकी है। मैं यह अनुभव करता हूं कि शायद अनजाने में ही, बिलकुल हंसी-

हंसी में हम दोनों एक जैसे रास्ते पर काफी आगे तक बढ़ गए हैं, जो न सिर्फ अनजाना है हमारे लिए, बल्कि काफी बीहड़ और दुनिया की नज़र में किसी सीमा तक एक अक्षम कोटि का पाप भी है। साथ ही, अब मैं अपनी थोड़ी-सी ज़िम्मेदारी भी महसूस करता हूं, क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि मुझको लेकर रीता की कुछ भी बदनामी हो, या तरह-तरह की अफवाहें उड़ाई जाएं, या वे लोग हम लोगों को देखकर कानाफूसी करें जिन्हें मैं नाली के कीड़ों से भी बदतर समझता था, क्योंकि उनके काले कारनामों और अमानवीय कृत्यों की कथाएं किसीसे छिपी न थीं।

मैं सोचता हूं कि रीता के संतोष के लिए कुछ न कुछ अवश्य करना होगा।

तेईस जनवरी—

आज मैं सवेरे से ही काफी परेशान था। दस बजते-बजते मैंने एक छोटी-सी चिट्ठी लिखी और किसी तरह रीता तक पहुंचा दी। उसमें मैंने लिखा था कि चूंकि हम लोग अब एक-दूसरे के काफी निकट आ चुके हैं, लेकिन फिर भी अगर हम लोग ठीक समझें और सहमत हों, तो यह रास्ता छोड़ा और बदला भी जा सकता है। वरना आगे चलकर यही हमारे दुःखमय जीवन का कारण भी बन सकता है। मैंने उसे लिखा था कि अगर वह मुझे भुला दे और मैं उसे, तो शायद हम लोग आगे चलकर अपना जीवन सुखमय ढंग से सामान्य रूप में बिता सकते हैं। मैंने रीता से शाम तक जवाब मांगा था और स्वयं मन ही मन यह निश्चय कर लिया था कि अब मैं हमेशा के लिए उसे भुला दूंगा…और मैं उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था, शाम की प्रतीक्षा कर रहा था।

(आज मैं जब यह सब आपको बता रहा हूं तो मन में यह सोच रहा हूं कि अगर मेरी यह सुबुद्धि कुछ समय तक मेरे हृदय पर अपना

प्रभाव रखती और हम दोनों वास्तव में एक-दूसरे को भुला देने का प्रयत्न करते तो शायद हम दोनों का ही भविष्य सुधरकर आशामय बन जाता। लेकिन फिर मन में यह भी आता है कि अगर वैसा हुआ होता तो आज मैं अपने दुर्भाग्य की यह कहानी इस प्रकार से आपको सुनाने ही क्यों बैठता!

इसके अतिरिक्त एक बात और है। उस समय जहां तक मैं समझता हूं, अपनी बुद्धि और समझ के हिसाब से बहुत ज़िम्मेदारी से यह कठोर कदम उठाने का निश्चय कर रहा था, क्योंकि यह उमर ऐसी होती है कि भावात्मक प्रवाह में किसी बड़े बुज़ुर्ग का उपदेश भी बहुत बुरा रहता है और किसीके भी समझाने से कुछ समझ में नहीं आता, बल्कि कभी-कभी उलटा प्रभाव भी होता है। फिर अपने-आपसे ऐसा निश्चय करना तो ज़रूर ही मेरी समझ में मेरे ही योग्य बात थी।

कभी-कभी मन में यह बात अवश्य आती है कि मेरी यह बात एकबारगी रीता को कितनी दिल तोड़नेवाली लगी होगी, क्योंकि उसपर तो प्रेम का यह भूत मुझसे कहीं ज़्यादा हैवानियत के साथ सवार था, बल्कि सच तो यह है कि कभी-कभी उसे इस प्रकार ईमानदारी और सचाई के साथ स्वयं को प्रेम करते देखकर मैं खुद कांप जाता था।)

शाम को रीता मेरे पास आई और उसने अपना हाथ मानो बड़े कष्ट से उठाकर मेरी चिट्ठी मुझे वापस कर दी। मैंने देखा, उसके साथ में कोई जवाब नहीं था। मैंने रीता के चेहरे की तरफ देखा, उससे आंखें मिलाईं। उसकी गीली आंखों को देखकर मैं जैसे अपने-आप ही सब कुछ समझ गया। परन्तु मैं स्वयं भी यह नहीं समझ पा रहा था कि क्या करना ही बिलकुल ठीक होगा। इसलिए

मैंने उसके उदास चेहरे पर नज़र गड़ाकर उससे कहा, "रीता, मुझे भूल जाओ।"

"आपको अब कैसे भूल सकती हूं ?" रीता ने धीरे से सुबकते हुए कहा, "कभी नहीं।"

लेकिन मैं यह सब नहीं सुनना चाहता था। उसकी वह दशा देखना मेरे लिए कठिन हो रहा था, जिसमें वह उस समय थी।

मैंने धारे से उसका हाथ पकड़कर दबाते हुए कहा, "नहीं रीता, यही ठीक होगा। अच्छा, विदा, हमेशा के लिए।"

और यह कहकर मैं वहां से हट आया, जैसे मैंने उसकी बात ही न सुनी हो। रीता शायद मुझे रोकना चाहती थी, लेकिन मेरे वहां से हट आने पर वह थोड़ी देर तक मेरी ओर देखती रही और फिर धीरे-धीरे कदम रखती हुई वापस चली गई।

चौबीस जनवरी—

आज मैं रीता से न मिलने की कसम खा चुका था। मैंने अपने कमरे के दरवाज़े की ओट से झांककर देखा, वह सवेरे से मेरी प्रतीक्षा में खड़ी थी, और काफी देर तक बराबर वहीं खड़ी रही। मैं बाहर नहीं आया और वह मुझे देख तक नहीं पाई। दिन-भर इसी तरह से बीता। लेकिन शाम को वह बहुत ही मायूस और व्याकुल दिखाई दी। मैं आखिरकार कुछ और देर करके बाहर निकला। उस समय वह नहीं थी। मैं छत पर टहलने लगा और देखा कि काफी देर की प्रतीक्षा के बाद भी उसे नहीं देख सका। अंत में मैं नीचे गली में आया। वहां पता चला कि उसके घर में ताला पड़ा हुआ था और सब लोग कहीं गए हुए थे। शाम को आखिरी बार जब मैंने उसे देखा था तो वह ऐसे कपड़े पहने हुई थी, जिससे यह मालूम होता था कि कहीं जा रही है। शायद उस समय वह आखिरी बार बड़ी आशा से ऊपर आई थी कि मैं अवश्य ही बाहर निकलूंगा।

मुझे मन में यह सोचकर पीड़ा हुई कि मेरा व्यवहार कितना निष्ठुर लगा होगा उसे।

पचीस जनवरी—

छब्बीस जनवरी—

सत्ताइस जनवरी—

अट्ठाइस जनवरी—

डायरी में इन चार दिनों के पन्ने फटे हुए हैं।

उनतीस जनवरी—

आज कई दिनों के बाद रीता से भेंट हुई। वह अपने घरवालों के साथ कटरे में रहनेवाले किसी रिश्तेदार के यहां चली गई थी, जहां से आज ही लौटी है। मुझे लगता था कि उस दिन जो वह व्याकुलतापूर्वक बार-बार ऊपर के चक्कर लगा रही थी, तो शायद इसीलिए ही कि मैं उसे देखने कटरे पहुंचूं। कटरे में शायद उसने बार-बार बाहर दरवाज़े पर आकर मेरी प्रतीक्षा भी की हो। आज मुझे मुन्नू से मालूम हुआ कि कटरे में, जहां वह ठहरी थी, मुझे उस जगह का पता भी है। खैर, आज मुझे रीता और उसके माता-पिता के वापस आ जाने का पता तब चला जब मैं शाम के वक्त घूमघाम-कर काफी अंधेरा हो जाने के बाद वापस आया। अप्रत्याशित रूप से मैंने उसे दरवाज़े पर ही खड़े पाया। उसके घर में सब लोग भीतर खाना खा रहे थे। मौका ऐसा था कि मैं अपना सारा रूठना भूलकर वहीं खड़ा रह गया और काफी देर तक फुसफुसाते हुए उससे बात करता रहा।

रीता ने मुझे बताया कि इन दिनों जब वह यहां नहीं थी, और मुझे वहां भी नहीं देख सकी थी, उसकी आंखों के सामने बराबर मेरी ही सूरत नाचती रही है। मैं यह सुनकर संतोष और गर्व के भाव से मुस्कराया और उसकी बातें चुपचाप सुनता रहा। गली में

बिलकुल अंधेरा था और उस दिन म्युनिसिपैलिटी की लालटेन भी नहीं जलाई गई थी। उसने आगे बढ़कर धीरे से अपना सिर मेरी छाती से सटा दिया था और मैं उसे सहलाने लगा था। रीता ने अपने दिल की बहुत-सी बातें मुझे बताईं। इस सबका नतीजा मैं यह निकाल सका कि अब उसके लिए मुझे भुलाना बहुत मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है।

मैं सुनता रहा और अपने हाथ से उसे सहलाता रहा। जब वह सारे शिकवे और गिले कर चुकी तब मैंने उसे समझाकर कहा, "देखो, रीता, तुम्हारा जो हाल है, वह मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं। मैं अपने दिल की भी हालत तुमसे क्या बताऊं, लेकिन तुम यह समझ लो कि मेरी हालत तुमसे भी ज़्यादा खराब है। इसलिए इस बात को भूलना ही ठीक होगा, क्योंकि सब कुछ देखते हुए अब हम दोनों की भलाई इसीमें है कि हम लोग एक-दूसरे को बिलकुल भूल जाएं।"

रीता यह सुनते ही छिटककर अलग हो गई। उसके तेवर बदल गए और वह सूनी गली के सन्नाटे को काटती हुई तीखी, लेकिन महीन आवाज़ में बोली, "तो क्या इसीलिए यह सब कर रहे थे?"

मैं कुछ न बोला और सीधे घर चला आया।

तीस जनवरी—

मैं कल रात से ही काफी उद्विग्नता महसूस कर रहा हूं। खेल-खेल में जो आकर्षण शुरू हुआ था वह अब गम्भीर शक्ल अख्तियार कर रहा है। आखिरकार सीधी बातों में इतनी जटिलता कैसे आ जाती है? हर आकर्षण की परिणति विवाह ही क्यों होनी चाहिए? क्या इसलिए कि जिसे कभी खूब प्यार किया जाता है, उसे ही निश्चित रूप से उतना ही खूब नफरत से देखा जाए? इसके अलावा पहली ही भेंट में हम किसीके साथ बुढ़ापे तक अपने जीवन को बांध

देने की तो नहीं ही सोचने लगते हैं ?

लेकिन ये दूसरी बातें हैं । ऐसी बातें जिससे किसी ऐसे आदमी को मतलब नहीं है, जो समाज में समझदार और प्रतिष्ठित समझा जाता है । हमारे यहां अगर किसीकी तरफ ताकिए तो फिर उससे विवाह करने का इरादा करके ही । नहीं तो फिर आपने उसकी तरफ क्यों ताका ? ज़रूर आपकी नीयत खराब रही होगी !

मेरा और रीता का संबंध जो कुछ भी था, था । मैं अब तक यह समझने में अपने-आपको असमर्थ पा रहा था कि आखिर इसका अंत कैसे क्या होगा । हम लोगों ने एक-दूसरे को देखा, चाहा, बात करना पसंद किया, इसलिए यह सब हुआ। लेकिन इसको विवाह की भूमिका के रूप में ही देखना क्यों बहुत ज़रूरी हो रहा है । कम से कम मेरी तरफ से तो इस संभावना पर अभी तक इतनी परेशानी के साथ गौर नहीं किया गया था। अवश्य रीता को चिंता हो रही थी, जिससे यह साफ ज़ाहिर था कि उसने इस खेल को इसीलिए आगे बढ़ाया क्योंकि उसे निश्चित विवाह का विश्वास था । अब अगर कोई गलतफहमी उसे भी हो गई थी, तो उसके लिए मैं भी अपने को काफी सीमा तक ज़िम्मेदार समझता था और इसीलिए मैं यह सोच रहा था कि आखिरकार यह सब किसलिए किया जा रहा था ।

मेरे मन में एक और बात चक्कर खा रही थी । प्रेम के बारे में बहुत कुछ पढ़-सुन रखा था । शायद हम लोगों को भी यह मुगालता हो कि हम दोनों आपस में प्रेम कर रहे हैं । इसलिए आज सवेरे जब रीता मुझे दिखाई दी, तो मैंने उसे इशारे से बुलाया और एकाएक उससे पूछा, "एक बात बताओगी ?"

"क्या ?" रीता ने सहज भाव से अपनी भारी पलक उठाकर मेरी तरफ देखते हुए पूछा ।

"तुम मुझे चाहती हो ?" मैंने पूछा ।

मेरा यह प्रश्न उसे कुछ अजीब-सा मालूम हुआ। वह लजाकर फीकी हंसी हंसने लगी। बोली, "यह भी कोई पूछने की बात है ?" और यह कहकर उसने फिर से अपनी निगाह नीची कर ली।

वह वैसे ही वहीं खड़ी रही और मैं भारी मन से वहां से हटकर चला आया।

इकत्तीस जनवरी—

आज शाम को मैंने उसे इशारे से दीवार के पार बुलाया और धीरे से उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। वह पुलककर निहाल हो उठी, क्योंकि इधर मेरी ओर से उसके साथ बहुत रूखा व्यवहार किया जा रहा था।

मैंने उसकी आंखों में आंखें डालकर सहसा कुछ मुस्कराते हुए उससे कहा, "आओ, मुंडेर फांदकर मेरे कमरे में आ जाओ।"

रीता ने यह सुनकर कुछ अविश्वास के साथ, जैसे मेरी आंखों में झांककर देखा, फिर कुछ उदास होकर बोली, "ऐसे मेरे भाग्य कहां ?"

मुझे उसपर तरस आया और दिल पर जैसे कुछ चोट-सी लगी। लेकिन मैंने जैसे उसे गुदगुदाते हुए उससे फिर कहा, "अच्छा, सुनो रीता, तुम मुझे एक चिट्ठी लिखकर दे दो।"

उसने वैसे ही निगाह नीची किए-किए ही कहा, "चिट्ठी नहीं दूंगी और चाहे सब कुछ कर लीजिए।"

उसके स्वर में भय और दृढ़ता थी।

मैं फिर मुस्कराया और उंगली से उसकी ठोढ़ी उठाकर उसका मुंह अपनी तरफ करते हुए पूछा, "और चाहे सब कुछ कर लें ?"

इस बार फिर रीता ने धीरे से लजाकर मुस्कराया और फिर अपना हाथ छुड़ाकर वहां से भाग गई।

इसके बाद डायरी में एक फरवरी से लेकर बारह फरवरी तक के कागज़ फटे हुए हैं।

तेरह फरवरी—

आज मैंने उसे बताया कि मैं अपने एक मित्र की शादी में कल बारात के साथ बाहर जा रहा हूं। तीन दिन में वापस आ जाऊंगा। यह सुनकर वह कुछ उदास-सी हो गई। कुछ बातचीत हम लोगों में और होती, लेकिन इसी वक्त उसकी माताजी ने आवाज़ दी और वह चली गई।

इसके बाद मैं दिन-भर यह राह देखता रहा कि वह ऊपर आए और मैं उसे बुलाकर कुछ बात करूं, लेकिन वह दिन-भर फिर ऊपर न आ सकी।

चौदह फरवरी—

आज उसने मुझसे कहा कि वह मेरे बिना ये तीन दिन कैसे काटेगी; अगर मैं अपना एक फोटो उसको देकर नहीं जाऊंगा। मैं यह सुनकर कुछ हंसा और फिर कमरे में से अपनी एक फोटो लाकर उसे दे दी, जो मैंने आइडेंटीफिकेशन कार्ड में चिपकाने के लिए खिचवाई थी।

चार

इस समय गहरे काले बादल आसमान में चारों तरफ से घिर आए हैं। अभी थोड़ी ही देर पहले सूरज की रोशनी की जो चमक धरती पर फैली हुई थी, वह अब फीकी-धुंधली होकर धीरे-धीरे अंधियारा और गहरा कालापन लेने लगी है। मैं कमरे के आगे बने हुए छज्जे पर से हटकर पीछे आ गया हूं और कमरे के दरवाज़े का सहारा लेकर इस अंधियारी होती घाटी को निहारने लगा हूं, जो इस भरे दिन में ही रतीली मालूम होने लगी है।

इस समय होटल भी कुछ सूना-सा लगने लगा है। मेरे दिमाग पर छाई उद्विग्नता अब भारीपन लेने लगी है। एकांत, जो कभी प्रिय लगता है, अब डसता-सा मालूम होता है। मेरे सामने झील है, उसका पानी शांत है और अंधेरे आसमानी पंजे के फैलने की प्रतीक्षा कर रहा है। घाटी में कुछ देर से जैसे जीवन की गति तेज़ हो गई लगता है। लोग जल्दी से जल्दी ज़रूरी कामकाज से निबटकर अपने-अपने स्थानों को पहुंच जाना चाहते हैं।

घाटी को चारों ओर से ऊंचे-ऊंचे पहाड़ घेरे हैं। वे अपने फैले घने जंगलों के कारण धीरे-धीरे हिलते-से मालूम होते हैं। उनकी भयावह छाया सर्वत्र व्याप्त है और इस भयावने वातावरण को और भी भयावह बना रही है। परन्तु कुछ-कुछ ऐसा लगता है, जैसे मैं

इस सबसे उतना अधिक प्रभावित नहीं हूं । क्योंकि मेरा अंतर शायद इससे अधिक भयावनेपन को अपने-आपमें लिए हुए है ।

मैं उस समय की सोच रहा हूं, जब मैं पहली बार रीता से अलग होकर तीन दिनों के लिए बारात में जा रहा था । बारात चौदह तारीख की रात को नौ बजे की गाड़ी से लखनऊ को रवाना होनी थी । मैंने रीता को समय बता दिया था और उससे कह दिया था कि वह मेरे चलते समय ज़रूर सामने रहे । मेरे मन में यह इच्छा थी कि जाते समय मैं बायें हाथ में सूटकेस संभाले और दाहिने हाथ से रूमाल हिलाता हुआ रीता से विदा लूं और कभी मुस्कराकर और कभी अपने पल्ले से अपनी आंखें पोंछकर वह मुझे विदा दे ; लेकिन ऐसा हो न सका। क्योंकि शाम को ही मेरे मित्र रघुनाथ के यहां से एक आदमी सवारी लेकर आ गया और मुझे उसके साथ ही चले जाना पड़ा । चलते समय मैंने बहुत चाहा कि रीता की एक झलक मिल जाए, लेकिन वह नहीं दिखाई पड़ा ।

रघुनाथ का मकान सिविल लाइंस पर था । मैं जब वहां पहुंचा तो वहां चारों तरफ बड़ी तेज़ी की हड़बड़ाहट थी । प्रत्येक व्यक्ति ऐसा व्यस्त और परेशान दिखाई देता था, मानो वह स्वयं ही समधी हो और विवाह का सारा उत्तरदायित्व और प्रबंध उसीके ज़िम्मे हो । सवारी पर से उतरकर मैं चाहता था कि किसी आदमी को रोककर पूछूं कि रघुनाथ कहां है, लेकिन हर आदमी की हवाई चाल देखकर किसीको रोकने की इच्छा नहीं होती थी । आखिरकार एक सज्जन को, जो बड़ी तेज़ी से कई बार इधर से उधर और उधर से इधर आ-जा चुके थे और दो-एक बार मुझपर भी प्रश्नसूचक दृष्टि डाल चुके थे, रोककर उनसे मैंने पूछा, "क्यों भाई साहब, आप बता सकते हैं कि मिस्टर रघुनाथ कहां हैं ?"

"एं !" वे महाशय इस प्रकार चौंके, जैसे मैंने उन्हें टोककर कोई

बड़ा भारी काम बिगाड़ दिया है और तीन कोनों का मुंह बनाकर उन्होंने जवाब दिया, "रघुनाथ ? वह अन्दर है।"

यह कहकर, इससे पहले कि मैं उनसे अगला प्रश्न पूछूं, वे झपटकर दूसरी ओर चले गए और फिर वैसे ही, पहले की तरह, इधर से उधर और उधर से इधर आने-जाने लगे।

मैंने कुछ साहस किया और फिर धीरे-धीरे कदम रखता हुआ घर के अन्दर पहुंच गया। आंगन में जाकर देखा, बीसियों स्त्रियों से घिरा हुआ रघुनाथ दूल्हा बना बैठा था और कोई विधि सम्पन्न हो रही थी।

मैं थोड़ी देर वैसे ही चुपचाप खड़ा रहा, और फिर लौटने का ही विचार कर रहा था कि किसीने कंधे पर हाथ रखकर कहा, "अरे रमेश, तुम कब आए ?"

मैंने चौंककर देखा, सामने प्रकाश खड़ा मुस्करा रहा था।

"बस अभी ही आया हूं।" मैंने उत्तर दिया।

"सामान कहां है ?" उसने आत्मीयता से पूछा, "चल तो रहे हो न ?"

"हां, बाहर रखा है।" मैंने उसे बताया और फिर उसके साथ ही बाहर चला आया।

प्रकाश ने चटपट सामान उठवाकर ठिकाने पर पहुंचवा दिया और इधर-उधर की बातें करने लगा।

"मोहन और राम वगैरह नहीं आए ?" मैंने उससे पूछा।

"मोहन तो आता होगा, राम शायद न चले।" उसने बताया, "और हां, किशन भी चल रहा है।"

"अच्छा, तब तो खूब रौनक रहेगी।"

"हां यार," वह मेरे हाथ पर हाथ मारकर बोला, "बस, मज़ा आ जाएगा।"

"बारात कितने बजे तक चलेगी ?" सहसा मैंने उससे पूछा।

"यही सात-आठ बजे तक।" उसने कहा, "तुम रघुनाथ से मिले अभी तक, या नहीं ?"

"अभी तो नहीं।"

"तो चलो।" वह मेरा हाथ पकड़कर घर के अन्दर ले जाता हुआ बोला, "वह तो आज बिलकुल..."

"बबुआ मालूम होता है।"

वह हंस पड़ा।

एकाएक जैसे उसे कुछ याद आ गया हो। वह मुझसे पूछने लगा, "चलो, कुछ जलपान तो कर लो।"

"नहीं भाई, अभी तो चाय पीकर ही चला हूं।"

"अमा, छोड़ो भी।" वह मेरी पीठ पर हाथ मारता हुआ कहने लगा, "अब दो-तीन दिनों के लिए यह संकोच छोड़ दो ; वरना बारात का मज़ा ही क्या ?"

इसी समय सामने से रघुनाथ आता दिखाई दिया।

"अरे रघुनाथ ?" प्रकाश उसे देखते ही चिल्लाया, "देखो, रमेश बाबू आ गए।"

रघुनाथ अपनी टोपी, दुपट्टा और उसमें बंधे हुए नारियल को संभालता हुआ मेरी तरफ बढ़ा और पास आकर पूछने लगा, "कब आए ? चल रहे हो न ? सामान कहां है ?"

"सामान रखवा दिया।" मेरे कुछ बोलने से पहले ही प्रकाश ने उसे बताया।

इसी समय अन्दर से किसीने रघुनाथ को पुकारा और वह हम लोगों से 'अभी आता हूं' कहकर लपका हुआ फिर से दूसरी ओर चला गया।

हम लोग फिर से बातों में लग गए।

थोड़ी ही देर बाद रघुनाथ के पिताजी दौड़े हुए एक तरफ से आए और बोले, "अरे प्रकाश, तुम अभी यहां खड़े हो ? जल्दी से सामान स्टेशन भिजवाने का इंतज़ाम करो। अभी गाड़ियां बाहर आईं या नहीं ?"

"अभी जाकर देखता हूं," कहकर प्रकाश बाहर की तरफ बढ़ गया। रघुनाथ के पिताजी भी किसी दूसरे काम को याद करके चले गए। मैं भी प्रकाश के साथ ही साथ बाहर आया। वहां पर एक बड़ा ट्रक तेज़ आवाज़ के साथ आगे-पीछे मोड़कर सीधा खड़ा किया जा रहा था। जब उसे सीधा खड़ा कर दिया गया, तब प्रकाश ने दूसरे आदमियों की मदद से जल्दी-जल्दी सारा सामान उसपर लदवाया। फिर कुछ आदमी उसमें बैठ गए और ट्रक स्टेशन के लिए रवाना हो गया। बाद में धीरे-धीरे और भी आदमी तैयार होकर स्टेशन पर सवारियों में जाते दिखाई दिए।

अब आसपास के वातावरण में काफी तेज़ी दिखाई पड़ रही थी। कोलाहल भी एकाएक बहुत बढ़ गया था। कभी-कभी प्रकाश भी ज़िम्मेदार लोगों की तरह प्रबंध करता हुआ मकान के भीतर-बाहर आता-जाता दिखता था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूं, इसलिए चुपचाप खड़ा था।

पांच-सात मिनट के बाद प्रकाश एक हाथ में मीठे और दूसरे में नमकीन की तश्तरियां लिए हुए आया और मेरे हाथ में ज़बरदस्ती पकड़ाता हुआ बोला, "लो भाई, थोड़ा-सा कुछ खाकर पानी तो पी ही लो, वरना तुम नाज़ुक-मिज़ाज आदमी हो और बारात का मामला है। न मालूम रात को किस वक्त खाना हो या न भी हो।"

मुझे कुछ भूख भी मालूम हो रही थी, इसलिए मैंने चुपचाप खाना शुरू कर दिया। इतने में प्रकाश एक कुल्हड़ चाय भी दौड़कर ले आया। मैं चाय पीकर फिर पहले की तरह आसपास हो रहे

इन्तज़ाम का अवलोकन करने लगा।

अब तक एक-एक दो-दो करके काफी बाराती स्टेशन जा चुके थे। काफी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद जब मैं उकता गया, तो मैंने देखा कि एक तांगा स्टेशन जानेवाला है और उसपर तीन सवारियां बैठ चुकी हैं, चौथी का इन्तज़ार है। मैंने कुछ सोचा और फिर चौथी सवारी की खाली जगह पर उचककर बैठने ही वाला था कि पीछे से प्रकाश आकर मेरा कोट पकड़कर खींचता हुआ बोला, "अररर, ऐसी भी क्या जल्दी है रमेश ? हम-तुम रघुनाथ के साथ ही चलेंगे।"

"एक ही बात है," कहता हुआ मैं कुछ झेंपता-सा उसके साथ हो लिया और फिर भीतर चला आया। वह मुझे उस कमरे में ले गया जहां रघुनाथ कपड़े बदल रहा था, और मुझे वहीं रहने को कहकर फिर किसी काम से चला गया।

"नाश्ता कर चुके ?" मोज़ा-जूता पहनते हुए रघुनाथ ने मुझसे पूछा।

"हां अभी-अभी !" मैंने कहा और चुपचाप उसकी ओर देखने लगा।

बहुत धीरे-धीरे उसने कपड़े पहने और फिर शीशे के सामने खड़ा होकर पन्द्रह मिनट तक अपना मुंह निहारता रहा, बाल ठीक करता रहा।

"तुम तो अभी से इतनी साज-सजावट कर रहे हो, जैसे सीधे जनवासे में जा रहे हो ?" मैंने कुछ झुंझलाकर कहा।

"कहां जी ? ज़रा हाथ-मुंह तो ठीक कर लूं। तमाम रोली लगी हुई है।" उसने एक बार मेरी तरफ देख, धीरे से मुस्कराते हुए कहा, "बस एक मिनट में चलता हूं।"

इसी समय 'रघुनाथ, रघुनाथ' की कान फाड़नेवाली आवाज़ें आने लगीं। रघुनाथ उन्हें सुनकर फ़र्श पर पड़ा हुआ अपना दुपट्टा

उठाकर बाहर की तरफ दौड़ गया।

मैं वहां फिर अकेला रह गया। मेरी समझ में न आ रहा था कि क्या करूं। शोर के कारण मेरे कान फटे जा रहे थे। मेरी झुंझलाहट बढ़ती जा रही थी। यहां जितना वक्त खराब हुआ था उतना यदि घर में ठहरता तो रीता से अवश्य भेंट हो गई होती और मन में इस कदर बेचैनी न होती।

इसके अलावा उस समय मैं यह भी अनुभव कर रहा था कि मेरे हृदय में एक प्रकार की पीड़ा-सी हो रही थी, मीठी-मीठी सी, क्योंकि मैं रीता से तीन दिनों के लिए अलग हो रहा था। और यह पीड़ा यह पता दे रही थी कि मैं उससे प्यार करता था।

हड़बड़ी के साथ सबके आखिर में मैं, प्रकाश और रघुनाथ स्टेशन पहुंचे। गाड़ी में एक डिब्बा पहले ही रिज़र्व करा लिया गया था, इसलिए जगह की तो कोई खास दिक्कत नहीं हुई, लेकिन साथ के लोगों ने सोने न दिया। मैं, रघुनाथ, प्रकाश और मोहन साथ ही बैठे थे। मोहन सीधा स्टेशन आया था। वह ताश की गड्डी निकालने ही वाला था कि रघुनाथ ने इशारे से उसे मना करते हुए कहा कि नानाजी से बातें करना ज़्यादा अच्छा रहेगा।

हम सबकी निगाहें एकसाथ ही नानाजी के चेहरे पर जम गईं। करीब सत्तर वर्ष की आयु, बदन कसरती, लेकिन बुढ़ापे के कारण कमज़ोर, चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई, आंखें छोटी और चमकीली, बदन गोरा, मुंह कुछ सफेद-सा, वेशभूषा साधारण, बातूनी बहुत ज़्यादा।

"नानाजी, ये लोग मेरे दोस्त हैं, साथ ही पढ़ते हैं।" रघुनाथ ने जैसे हम तीनों का एकसाथ ही परिचय देते हुए कहा।

नानाजी की निगाह हम सबपर बारी-बारी से पड़ी और हमने उन्हें प्रणाम किया।

"जीते रहो।" नानाजी ने अकारण ही कुछ खुश होते हुए कहा, "मालूम होता है कि तुम लोग भी इलाहाबाद के ही रहनेवाले हो ? है कि नहीं ?"

हममें से कोई कुछ बोले, इसके पहले ही नानाजी के पड़ोस में बैठा एक अधेड़ आदमी, जो उनके गांव का ही मालूम होता था, एकाएक बोल उठा, "सो तो है ही, भला आप झूठ···" हकलाहट की वजह से वह आगे के शब्द न बोल सका। एक बार में हल्ला करके शायद वह इतने ही शब्द उच्चरित कर सकता था।

"एक ज़माना हो गया," नानाजी एक ठंडी सांस लेते हुए बोले, मानो कोई बहुत पुरानी बात याद कर रहे हों, "वह इलाहाबाद ऐसा थोड़े ही था, जैसा आज है। तब के और अब के इलाहाबाद में ज़मीन-आसमान का अंतर है। है कि नहीं ?"

नानाजी का साथी फिर स्वाभाविक रूप से बोल उठा, "सो तो है ही, भला आप झूठ···"

नानाजी ने एक बार फिर हम सबके चेहरों पर बारी-बारी से निगाह डाली और बोले, "तब तो तुम लोगों में से शायद कोई पैदा भी न हुआ होगा। है कि नहीं ?"

"सो तो है ही, भला आप झूठ···"

नानाजी फिर कुछ कहना शुरू करनेवाले थे कि रघुनाथ ने बीच में ही टोककर कहा, "नानाजी, मैंने इन लोगों से आपके शेर के शिकार के बारे में बतलाया था। ये लोग भी थोड़ी-बहुत दिलचस्पी रखते हैं शिकार में। इन्हें आप अपने कुछ तजुरबे···"

"शिकार ?" नानाजी कुछ उत्साह-भरे स्वर में, लेकिन मुंह बनाकर बोले, "आजकल के ज़माने में क्या शिकार ? इसके लिए कलेजे में हिम्मत होनी चाहिए ? शिकार का तो वही ज़माना था। है कि नहीं ?"

"सो तो है ही। भला आप झूठ···"

रघुनाथ ने कहा :

"नानाजी आपने शेर का शिकार···"

"हुंह···" नानाजी कुछ उपेक्षा से हंसे। बोले, "अरे, शिकार बस शेर का ही होता है। और नहीं तो भला कोई मछली, चिड़िया मार लेना भी शिकार कहा जाएगा? ये सब तो आजकल के शिकार हैं। और तुम लोग भी इन्हींके शिकार को शिकार समझते हो। अरे, हमारे ज़माने में तो बस शेर का ही शिकार होता था।···यह उस बार का ज़िक्र है, जब ज़िले में अंग्रेज़ हाकिम के साथ मैं राजस्थान के जंगलों में शिकार के लिए गया था। ओफ, याद करता हूं, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं···"

नानाजी ज़रा देर के लिए रुके, मानो उस रोमांचकारी कल्पना ने उनके शरीर को वास्तव में कंपकंपा दिया हो। और फिर आंखों में एक अजीब तरह की चमक पैदा करके बोले, "हांका लगवाया गया और हम लोग घोड़ों पर सवार होकर जंगल में घुस पड़े। मैंने साहब से लाख कहा कि मचान पर बैठकर ही शेर का शिकार खेलना अच्छा रहेगा, यहां के शेर बड़े खूंखार होते हैं, लेकिन भला वह क्यों मानने लगा। आखिर को तो मेरी ही तरह मर्द था न? बोला, 'ठाकुर साब, मचान पर से तो मेमसाब लोग शिकार खेलता है। तुम डरता है क्या?'

"मेरी बांहें फड़कने लगीं। मूंछों पर ताव देते हुए मैंने कहा, 'नहीं साहब, वह तो मैंने आपका सहूलियत के लिए ही कहा था।'

"और यह कहते-कहते मैंने घोड़े को एड़ लगा दी। साहब भी घोड़ा बढ़ाए रहा। पूरे तीन घंटे तक हम लोग घने जंगलों में भटकते रहे। शेर तो शेर, शेर का बच्चा तक कहीं नज़र न आया। साहब

तो हिम्मत हार चुका था, लेकिन मैं धीरज धरे रहा।

"एकाएक एक तरफ से हांके का शोर बढ़ा। हम लोग यह समझने की ही कोशिश कर रहे थे कि किस मुकाम पर यह शोर हो रहा है कि एक झाड़ी के पीछे से पूरा बारहफुटा, जंगली, खूंखार शेर गरजकर हमारे घोड़ों के सामने दस गज़ के फासले पर, अपने पिछले पैरों पर खड़ा, चिनगारियां छोड़ती आंखों से हमें घूरता हुआ दिखाई पड़ा।

"साहब के तो यह देखते ही देवता कूच कर गए। उसने एक बार घबराकर पीछे देखा और किसी मददगार को न पाकर उसके हाथ-पांव फूल गए। राइफल हाथ से छूटकर दूर जा गिरी—दस फुट पर।

"साहब की यह हालत देखकर मुझे उसके लिए फिकर हुई। मैंने बंदूक के कुंदे से उसके हाथ को छूकर कहा, 'साहब, ज़रा भी हिलिए-डुलिएगा नहीं, जान का खतरा है।'—और मैंने फिर बंदूक से शेर की खोपड़ी का निशाना साधा।

"करीब तीन मिनट तक हम तीनों बिलकुल चुप रहे; बिना ज़रा भी हिले। और उसके बाद शेर एकाएक छलांग मारकर उचका।

"मैंने घोड़ा दबा दिया और धांय-धांय करके दो फायर कर दिए।

"इसके बाद न मुझे कोई होश रहा और न साहब को। शायद घोड़े से लुढ़क जाने के कारण हम लोग बेहोश हो गए होंगे, क्योंकि घोड़ों को भी उस वक्त काबू में रखना कठिन हो रहा था।

"जब मैं होश में आया तो मैंने देखा कि साहब एक अखबार का पंखा बनाकर मुझपर झुका हुआ हवा कर रहा था और आसपास तमाम लोग हमें घेरे खड़े थे। वह बारहफुटा शेर भी वहीं मरा पड़ा

था। मेरी दोनों गोलियों ने उसकी खोपड़ी फाड़ दी थी।

" उसी दिन से साहब ने शिकार के मामले में मुझे अपना उस्ताद मान लिया। जब भी शिकार पर जाता, मुझे बुलाने के लिए मोटर पहले भेज देता।"

नानाज इस बार ज़रा ज़्यादा देर तक सांस लेने के लिए रुके। फिर बोले :

"शेर तो बहुत मारे, लेकिन वह बारहफुटा शेर ? वैसा एक भी नहीं। और आजकल का शिकार तो बिलकुल तमाशा ही होता है। है कि नहीं ?"

"सो तो है ही। भला आप झूठ···" उनके साथी फिर बोल उठे।

लेकिन नानाजी को इस बार उनका बोलना अखर गया। झल्लाकर बोले, "अमां चुप भी रहो, क्या बीच में टांय-टांय लगाए रहते हो ? मालूम होता है, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। है कि नहीं···"

"सो तो है ही। भला आप झूठ···"

और नानाजी के सो जाने पर रघुनाथ ने हमें बताया कि उन्हें उस गली तक में जाने में डर लगता है, जहां किसी तेज़ कुत्ते के होने का शक उन्हें हो। और बंदूक···

वह बोला, "उन्होंने मेरी शादी तक में बंदूक छुड़ाने की सख्त मनाही कर दी है।"

बारात में कई दिन हंसी-खुशी में बीते। नानाजी का प्रसंग मुझे वैसे ही कोई विशेष रुचिकर नहीं लगा और बारात में भी हर बात में उनका लहजा एक तरह के जनानेपन से भरा रहा। बारात की कुछ घटनाएं अवश्य मैं आपको सुना सकता था, जो इस लायक हैं।

लेकिन मैं आपसे सच कहता हूं कि अब फिर मेरे मन में एक तरह की टीस-सी उठने लगी है और मुझे इस वक्त सिर्फ इतना ही याद आ रहा है कि बारात लखनऊ में पूरे तीन दिन तक ठहरी थी और ये तीनों ही दिन अच्छी तरह कटे थे। विशेष बात यह है कि इन तीनों ही दिनों में मैं ऐसी ही मीठी और तीव्र पीड़ा का अनुभव करता रहा, जो इस समय हो रही है, और बराबर लखनऊ से इलाहाबाद वापस जाने के स्वप्न मैं देखता रहा, क्योंकि वहां रीता थी, वह रीता जो मेरी कल्पना में मेरी पत्नी बननेवाली थी और मेरा उससे विवाह होने को था।

पांच

मैं इस समय होटल में अपने कमरे में बैठा हूं। सवेरे के नौ बज चुके हैं। मेरी तबियत कुछ उचटी-उचटी-सी है। आज सवेरे से ही मैं कुछ उदासी के मूड में हूं। मैं बाहर देख रहा हूं। अब कोहरा कुछ कम होने लगा है और पहाड़ की चोटियों पर धूप चमकने लगी है।

मैं अपने कमरे की एक-एक चीज़ पर निगाह डालता हूं। कमरे में एकदम शांति का वातावरण है। रेडियो की हल्की, मधुर संगीत-लहरियां गूंज रही हैं। रेडियो पर एक पंजाबी गाना हो रहा है। मैं पंजाबी काफी समझता हूं और मुझे पंजाबी गाने अच्छे भी लगते हैं। इस गीत में अपने प्रेमी को संबोधित करके एक प्रेमिका कह रही है कि मुझे इस प्रकार से अकेला छोड़कर मत जाओ। मेरा कोमल हृदय इस आघात को नहीं सहन कर सकेगा। मैं तुम्हारी सेविका हूं; आदि।

गीत में भावुकता अधिक है, जैसीकि इस प्रकार के गीतों में अधिकांशतः होती है। खबरें खत्म होने से पहले रेडियो सूचना देता है, जिससे पता चलता है कि वह दिल्ली-रेडियो था। समाचार होने लगते हैं और मैं रेडियो पर से निगाह हटा लेता हूं।

रेडियो के बगल में आदमकद शीशे के दरवाज़ेवाली एक बड़ी-

सी कपड़ों की अलमारी है। उसीसे लगा हुआ कमरे के कोने में दो तरफ से दीवारों से लगा हुआ एक स्प्रिंगदार बेड है, जिसपर एक कवर पड़ा हुआ है। उसीसे लगी हुई एक छोटी मेज़ रखी है, जिसपर गहरे नीले रंग की धारियोंवाला एक नीला मेज़पोश पड़ा हुआ है। उसपर हरे रंग के बल्बसहित एक बिजली का लैंप रखा है। उसीके पास एक बहुत छोटी-सी टाइमपीस रखी है। एक किनारे पर ऐशट्रे, सिगरेट का डिब्बा और लाइटर रखा है। लैंप के पीछे डाइरेक्टरी पर टेलीफोन भी रखा है।

दूसरी ओर कमरे की दीवार से लगी हुई एक और अलमारी है। उसीसे लगा हुआ एक दरवाज़ा है, जिसके पीछे बाथरूम है। दरवाज़े की बगल में ड्रेसिंग टेबल है। उसपर दो-तीन ब्रुश बाल झाड़ने और कंघा साफ करने के लिए रखे हैं। एक शीशे के फ्रेम में रीता की फोटो लगी रखी है। दो-तीन तेल और सेंट की शीशियां, पाउडर का डिब्बा और एक प्राइज़ कप भी वहीं रखा हुआ है।

एक किनारे पर पढ़ने-लिखने की एक छोटी-सी मेज़ रखी है। उसीके साथ लगी हुई एक लोहेवाली छोटी कुरसी। मेज़ पर बाईं ओर एक पोरटेबिल टाइपराइटर भी रखा है। एक डायरी-कैलेंडर, एक बड़े साइज़वाली डायरी, ऊनी दस्ताने, कुछ पत्र, फाउंटेनपेन वाली रोशनाई की दवात, ऐनक का केस, धूपवाली काले शीशे की ऐनक, ताली का गुच्छा और ब्लाटिंग पैड भी उसपर यथास्थान रखे हैं। कमरे के बीचोंबीच एक गोल छोटी मेज़ पड़ी है, जिसपर एक बड़ी-सी प्लेट में कुछ संतरे और केले रखे हुए हैं। फर्श पर एक हैंडबैग पड़ा हुआ है। हीटर जल रहा है और कमरा खासा गर्म है।

मेरी तबियत में अब बेचैनी-सी होने लगी है। कमरे का वातावरण अकारण ही दम घोटनेवाला लगता है। मैं बाहर बरामदे में आ जाता हूं और छज्जे के पास पड़ी हुई आरामकुर्सी पर बैठ

जाता हूं।

यहां से मुझे झील का सारा दृश्य दिखाई दे रहा है। अब सवेरे के नौ बच चुके हैं। ठंठ से सिकुड़ते हुए लोगों में चारों ओर अच्छी तरह फैल चुकी धूप ताज़गी पैदा कर रही है। झील में काफी संख्या में लोग नौका-विहार कर रहे हैं। मेरे सामने कई नावें आती-जाती दिखाई पड़ रही हैं। इनमें से दो नावें पाल से चलनेवाली भी हैं। इन नावों पर सभी तरह के लोग बैठे हुए हैं। एक नाव पर एक युवक और एक युवती भड़कीले कपड़े पहने बैठे हैं। दोनों ही पतवार लिए हैं और काफी खुश नज़र आ रहे हैं। एक दूसरी नाव पर अधेड़ आयु की तीन स्त्रियां बैठी हैं। उनमें से जो अपेक्षाकृत कम आयु की है, वह नाव खे रही है। तीनों बातें कर रही हैं और कभी-कभी हाथ उठाकर इधर-उधर पहाड़ों की तरफ कुछ इशारे भी करती हैं। तीसरी नाव पर एक बूढ़े-से सूट-टोपधारी सज्जन बैठे हैं। वे अपने लम्बे सिगार को मुंह में लगाए हैं और बराबर धुआं उड़ा रहे हैं। नाववाला उन्हें झील की सैर करा रहा है। चौथी नाव पर दो नवयुवक बैठे हैं और काफी तेज़ी से नाव खे रहे हैं तथा अन्य नावों पर बैठे लोगों की तरफ कुछ गर्व से देख रहे हैं। पाल से चलने-वाली दो नावें झील में इधर से उधर तेज़ी से आती-जाती हैं। उनकी रफ्तार साधारण नावों से तेज़ है।

झील के किनारे बनी हुई पतली लम्बी सड़क पर कुछ लोग घोड़े की सवारी का आनन्द ले रहे हैं। इनमें बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी शामिल हैं। झील के बगल में एक नुमायश भी लगी हुई है—बड़े मैदान में। लेकिन इस सवेरे के वक्त वहां रात जैसा कोई आकर्षण नहीं है। वहां लगे हुए सैकड़ों बिजली के लाल, हरे, पीले, नीले बल्ब धूप में चमक रहे हैं। इधर-उधर सिनेमा के कुछ पोस्टर भी लगे हुए हैं।

लेकिन मेरी तबियत इस सबमें इस वक्त नहीं लगती। मेरा मन ऊबने लगता है और साथ ही मेरी उद्विग्नता भी बढ़ती जाती है। मुझे बीती हुई कुछ बातें याद आने लगती हैं। वह भी एक ऐसा ही सवेरा था···

···उस दिन सवेरे मैं ज़रा देर से सोकर उठा था। हाथ-मुंह धोकर चाय पीने के बाद छत पर धूप में टहल रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद रीता के घर की छत की तरफ भी देख लेता था। करीब दस-पन्द्रह मिनट के बाद रीता कुछ इठलाती हुई-सी ऊपर आई। आज वह न जाने क्यों, लेकिन बहुत खुश दिखाई दे रही थी। मुझे यह देखकर कुछ कौतूहल हुआ। मैंने देखा, वह स्वयं ही धीरे-धीरे चलती हुई मेरे पास चली आई। बोली, "आज घर में कोई भी नहीं है।"

"क्यों ?" मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए पूछा, "सब लोग कहां चले गए ?"

"एक रिश्तेदार के यहां गए हैं।"

"कब तक आएंगे ?"

"अब शाम से पहले क्या आएंगे !"

"तुम बिलकुल अकेली हो ?"

"मुन्नू अभी थोड़ी देर में स्कूल चला जाएगा।"

"अच्छा।" मैंने धीरे से कहा और उसके चेहरे की तरफ ताकने लगा।

"अभी आती हूं। ज़रा मुन्नू को खाना खिला दूं।"—कहकर वह धीरे से अपना हाथ छुड़ाकर चली गई।

मैं कुछ सोचता हुआ अपने कमरे में वापस आ गया। उसी समय मम्मी ने आवाज़ दी कि नहाकर खाना खा लो। मैंने तौलिया और साबुन उठा लिया और नीचे चला गया।

जल्दी से नहा-धोकर मैंने खाना खाया और फिर कपड़े पहनकर किताबें उठाईं। फिर यूनिवर्सिटी जाने को तैयार हो गया। चलने के पहले एक बार रीता की छत पर निगाह डाली। वह वहां खड़ी थी। मैं उसे एक बार मुस्कराती निगाह से देखकर नीचे उतरा और बाहर गली में आ गया।

वहां पहुंचकर मैंने देखा, अब तक रीता भी नीचे आ गई थी और बाहर के कमरे का दरवाज़ा आधा खोले हुए खड़ी थी। मैं गली में किसीको न देख कुछ देर के लिए उसके पास खड़ा हो गया। उसने धीरे से मुझे बताया, "मुन्नू स्कूल चला गया है।"

"घर में कोई नहीं है?" मैंने जानते हुए भी पूछा।

"नहीं।" वह धीरे से बोली।

मेरी छाती धड़कने लगी। मैंने एक बार इधर-उधर देखा, फिर उसके कमरे के भीतर चला गया। दरवाज़ा धीरे से बन्द करके बिना ज़रा भी आवाज़ किए हुए सिटकनी चढ़ा दी।

मैंने देखा, रीता मुझसे कुछ ही फासले पर हटकर चुप खड़ी थी। मैंने एक बार उसे निगाह भरकर देखने की कोशिश की। उसने भी मेरी तरफ भरी हुई आंखों से देखा। मुझपर एक अजीब तरह का नशा-सा छाने लगा। मैं कांपता हुआ आगे बढ़ा और उसकी कमर में हाथ डालकर उसे अपनी ओर खींचा। वह ढीली-ढाली-सी मेरी कसी बांहों में आ गई और मैंने उसका कोमल गोरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। वह मेरे कंधे पर शिथिल होकर टिक गई।

यों तो हम लोगों का अब तक ऐसे अनेक अवसरों से गुज़रना हुआ था, जब हम परस्पर इतने निकट रहे थे, लेकिन उस दिन जैसा रोमांच मुझे, और शायद रीता को भी, पहले कभी नहीं हुआ था। मैं उसकी अलसाई, फैली आंखों को देख रहा था और उनकी गहराइयों में डूबा जा रहा था। मेरे होश धीरे-धीरे खोते जा रहे थे।

मैं उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में झांककर देखने की कोशिश कर रहा था। कुछ खोज रहा था। उन आंखों में क्या था ? प्रेम··· वासना या···या और कुछ ? नहीं, शायद कुछ नहीं, हां कुछ नहीं। मुझे उनमें कुछ नहीं दिखाई दे रहा था, या शायद मैं खुद ही कुछ नहीं देख पा रहा था, शायद मैं अंधा हो गया था।

हम दोनों ही इस अप्रत्याशित परिस्थिति में किसी निषिद्ध और रुद्ध सुख की अनुभूति की प्रत्याशा—सम्भवत: हम लोगों में जागरित हो रही है, हम दोनों में ही अब अपने हृदयों की धड़कन खूब तेज़ हो गई—महसूस कर रहे थे। मेरे कंधे पर रखा हुआ रीता का हाथ थरथरा रहा था। मैंने उसे फिर अपने हाथ में ले लिया। मैंने देखा, वह अचेत-सी होती जा रही थी। मैंने यह भी महसूस किया कि उसने उसी अधहोशी में अपनी ढीली बांहें मेरे गले में डाल दीं और जैसे गिरने को हुई। मैंने अपने दोनों हाथों में उसे कमर से पकड़कर रोक लिया और प्रगाढ़ आलिंगन में ले लिया। उसकी बाहों का शिथिलता कम होने लगी और मैंने धीरे-धीरे उनकी कसावट का अनुभव किया।

मैंने अपने कन्धे पर टिके हुए उसके मुंह-ठोढ़ी को अंगुली से उठाकर अपने सामने किया। उसकी अधखुली नशीली आंखें, उसकी गर्म-गर्म सांसें, उसके फड़कते हुए होंठ और उनसे निकलती हुई आग। मेरी चेतना लुप्त होती चली जा रही थी। मैं उसके मुंह पर झुकता जा रहा था। वह कोई प्रतिरोध नहीं कर रही थी। मैं पागलों की तरह उसका माथा, उसका गला, उसके होंठ और उसके गाल चूमता जा रहा था।

थोड़ी देर हम लोग वैसे ही खोए-भूले हुए खड़े रहे। फिर वह धीरे से अपने-आपको अलग करती हुई हट गई। मुझे कुछ प्यास-सी मालूम हो रही थी। मैंने उससे एक गिलास पानी मांगा।

वह धीरे-धीरे चलती हुई कमरे के बाहर हो गई। मैं वहीं पड़ी हुई एक कुरसी पर बैठ गया।

वह जल्दी ही एक गिलास में पानी लेकर वापस आ गई। मैं एक ही सांस में सारा पानी पी गया और खाली गिलास वहीं निकट रख दिया।

"और लीजिएगा?"

"नहीं।"

वह अपने मुंह पर मुस्कराहट लाने की कोशिश कर रही थी; लेकिन वह मुस्करा न सकी। मैंने देखा या अनुभव किया कि वह मेरी कुर्सी के पीछे आकर खड़ी हो गई और हौले-हौले अपनी नरम हथेलियों से मेरा माथा सहलाने लगी। उसकी लम्बी, पतली उंग-लियां मेरे बालों से खेलने लगीं। मुझे तब यह भी महसूस हुआ कि मेरे सिर में थोड़ी-थोड़ी पीड़ा हो रही थी।

मेरा हृदय अभी तक प्रेम की पवित्रता से जगमगा रहा था, लेकिन अब उसमें वासना जाग उठी। मैं भयानक मानसिक उथल-पुथल का अनुभव करने लगा। रीता मेरे सिरहाने निष्कपट भाव से खड़ी थी। उसका ठंडा कर-स्पर्श मुझे शीतलता प्रदान करने के साथ ही साथ बुरी तरह उत्तेजित भी कर रहा था। मैं तीव्रता के साथ यह अनुभव कर रहा था कि मेरे हृदय की पाशविक वृत्तियां जाग उठी हैं और अपनी तृप्ति के लिए मुझे इस बात पर मजबूर कर रही हैं कि मैं अपनी पूरी हैवानियत के साथ पागलपन पर उतारू हो जाऊं। मेरा विश्वास स्वयं अपने-आपपर से उठता जा रहा था। उसके कोमल, कांतिपूर्ण अंग, जिन्हें मैं अभी तक सहेजकर अपने हृदय में रख लेना चाहता था, अब मुझे इस बात के लिए मजबूर कर रहे थे कि मैं उन्हें अपनी कामवासना का शिकार बनाऊं, उन्हें मसल डालूं।

मेरी सांस अब ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी। मैंने देखा, रीता अब भी पूर्ववत् स्नेह से अपनी मुलायम उंगलियां मेरे बालों में उलझाती जा रही थी। मैंने उसके चेहरे पर निगाह डाली। वह पवित्र सौंदर्य की चमक से उज्ज्वल था। नहीं, नहीं, एक बार मेरी चेतना जैसे लौटने को हुई और मेरा विवेक जागने को, लेकिन दूसरे ही क्षण मैंने पागलों की तरह से रीता को अपनी गोद में खींच लिया।

...और थोड़ी देर बाद हम दोनों बुरी तरह से कांप रहे थे। रीता का चेहरा पीला पड़ गया था। वह भयानक रूप से डरी हुई मालूम होती थी और ज़ोर-ज़ोर से सिसकियां भरने लगी थी। वह धीरे-धीरे अपने होश भी खोती जा रही थी। मैं स्वयं बहुत घबराया हुआ था और एकाएक समझ नहीं पा रहा था कि क्या करना चाहिए।

"रीता, रीता! ईश्वर के लिए चुप हो जाओ।" मैंने उसे सांत्वना देते हुए कहा और उसे अपनी दोनों बांहों में संभालकर धीरे-धीरे उसकी पीठ सहलाने लगा।

"प्रियतम!" उसने कांपती और भरभराती हुई आवाज़ में मुझसे कहा, "यह आज क्या..."

वह बड़ी चेष्टा करने पर भी आगे कुछ न बोल सकी और मेरी छाती में सिर छिपाती हुई फफक-फफककर रो पड़ी।

मेरे लिए यह सब सर्वथा अप्रत्याशित था। मैंने धीरे से उसका सिर उठाया और अपना मुंह उसके फड़फड़ाते हुए गरम होंठों पर रख दिया।

"रीता!" मैंने फुसफुसाते हुए उसके होंठों पर होंठ हिलाते हुए कहा।

उत्तर में वह कुछ न बोली। केवल उसने अपनी आंखें उठाईं

और मेरी तरफ सूने भाव से ताकने लगी।

मैंने देखा, उसकी आंखों में अब भी आंसू भरे हुए थे और वे कुछ सूज भी आई थीं।

ओह, कैसी थी उसकी वह दृष्टि! आज भी मैं जब उसकी कल्पना करता हूं तो सिहर उठता हूं। मेरे सामने उसकी वही करुणा से भरी हुई मूर्ति आ जाती है और वह अपनी भीगी पलकों को फैलाए मुझे निहारती नज़र आती है। मैं कभी-कभी यह भी अनुभव करता हूं कि उसकी उन आंखों में आगे आनेवाले भयानक दिनों के दुर्भाग्य के संकेत निहित थे।

मैंने थोड़ी देर के लिए चैतन्य होना चाहा, ताकि मैं यह सोच सकूं कि यह जो कुछ भी हो गया है, इसमें कितनी और किस प्रकार की जटिलताएं हो सकती हैं। कभी मैं यह भी सोचता था कि यह चाहे जो कुछ भी हो, कम से कम इसको पाप तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पाप में जो कलुषता होती है, वह इसमें आभासित नहीं होती थी। अधिक से अधिक इसको उस समय मैं एक भूल मानने को तैयार था, किसी सीमा तक एक अपराध, जो परिस्थितियों के अनुसार क्षम्य भी हो सकता था और जिसके लिए और लोग भी ज़िम्मेदार थे। परन्तु इसका परिणाम हम लोगों को ही भुगतना था। शारीरिक और सामाजिक रूप से रीता को, और मानसिक तथा आत्मिक रूप से मुझको।

छः

चक्करदार संकरीले पहाड़ी रास्तों को पार करता हुआ मैं ऊपर चढ़ रहा हूं। यहां पर एक तरह की हीन-भावना मुझमें भरने लगती है जो मानव की समस्त उपलब्धियों के बावजूद भी उसपर हावी प्राकृतिक शक्तियों की उपेक्षा नहीं कर पाती। कभी-कभी सुन्दर से सुन्दर मानव-शरीर भी प्रकृति के इस कुंवारे सौन्दर्य के सामने इतना फीका लगने लगता है कि एक वितृष्णा-सी होने लगती है। लेकिन मन फिर बहकता है, जान-बूझकर बहकता है और बहकता रहता है।

पहाड़ी जंगलों की ऊंची-नीची गहराइयां मन में एक कौंध उत्पन्न करती हैं। कंटीली झाड़ियां और पथरीले अंतहीन रास्ते, जो पता नहीं कहां-कहां जाते हैं, शायद हर कहीं जाते, या हो सकता है कि कहीं नहीं जाते हों। मुझे भी पता नहीं इस समय कहां जाना है, शायद हर कहीं जाना है, या हो सकता है कि शायद कहीं नहीं जाना हो।

चिकनी कठोर चट्टानें मानवीय स्पर्श से हीनता के कारण विधवा-सी लुटी हुई दिखाई देती हैं। जनहीनता का वातावरण मृत्यु की उपस्थिति आभासित करता है। जनविहीन स्वर एक अपरिचय की अनुभूति उत्पन्न करते हैं। कहीं-कहीं पर हल्के कलकल स्वर में

बहते ठंडे पानी के पहाड़ी सोते असमान भूमि पर हल्की गति में बहते हुए किसी अदृष्ट व्यवस्था के नियम का सूचन करते हैं। पार-दर्शी जल के तल का रहस्य अप्रकट रूप में चमत्कृत करता है। छोटे-बड़े पत्थर के टुकड़े उसकी गति को रुद्ध करना चाहते हैं, लेकिन वह उन सबसे टकराता-भिड़ता आगे बढ़ता चला जाता है। कहीं-कहीं पर छोटे या गहरे गढ़े हैं, जिनमें पानी बहता हुआ कुछ देर के लिए एक चक्कर में बंधकर रुक गया-सा लगता है।

पगडंडी के एक तरफ बहुत नीचा-नीचा-सा सब कुछ दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है जैसे किसी हवाई जहाज़ पर बैठकर मैं काफी ऊंचा उड़ रहा होऊं और बादलों की बस्ती को अपने काफी नीचे छोड़ आया होऊं। धुनी हुई सफेद रूई के गुच्छे की तरह से बादलों में हल्की-हल्की हरकत हो रही है। नीची पहाड़ियों और खाइयों पर वे किसी बहुत बड़े डैनोंवाले पक्षी की तरह धीरे-धीरे उड़ते हुए आगे बढ़ते जाते हैं—अपनी छाया से आसपास के वातावरण को आवृत्त करते हुए। बादलों की रंगबिरंगी छाया में पहाड़ियों और पेड़ों का मटमैला रंग न जाने किस-किस तरह के रंगों में रंग गया लगता है। एक तरह के नशीले सपनीले रंग।

कहीं-कहीं गहरी उदासी के साथ कोई भारी पेड़ चुपचाप किसी सूने कोने में खड़ा दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है जैसे अपने-आपको सबकी निगाहों से छिपाना चाहता हो, जैसे अपने पश्चात्ताप की घड़ियों को काट रहा हो, जैसे अपने किसी किए का प्रायश्चित्त कर रहा हो। और उसे देखकर मैं अनायास ही व्यथित हो उठता हूं। क्योंकि कभी-कभी इस दुनिया में बहुत छोटी-सी किसी गलती का बड़ा क्रूर दंड सहन करना पड़ता है···

···रीता के साथ जिस दिन यह घटना घटित हुई, उस दिन से ही हम दोनों के स्वभाव में एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन दिखाई

देने लगा। ऐसा मालूम होता था जैसे उस दिन से हम लोगों का संसार ही बदल गया हो। हम दोनों दूसरों से ही नहीं, एक-दूसरे से भी कुछ कटे-कटे-से रहने लगे, कुछ दूर-दूर, जैसे कतराते हों सामना करने से। रीता भी अब ऊपर छत पर मेरे सामने बहुत कम आती। उससे बातचीत करना तो दूर, यहां तक कि मैं हफ्तों तक उसकी सूरत न देख पाता था। और अगर कभी वह संयोगवश मेरे सामने पड़ भी जाती थी, तो किसी बहाने से नीचे चली जाती थी या कतराकर सामने से हट जाती थी। इतनी ही देर में मैं यह देख लेता था कि उसकी आंखें भीगी-भीगा-सी हैं। वह किसी अज्ञात भय की कल्पना से सहमी हुई है।

मुझे यह सब देखकर बड़ी परेशानी होती थी। मैं चाहता था कि किसी प्रकार एक मिनट के लिए अवसर मिले तो उसे सान्त्वना दूं और यह कहूं कि किसी भी बात के लिए घबराए नहीं। सारी ज़िम्मेदारी मेरी है और मैं उससे बचना भी नहीं चाहता हूं। उसे किसी भी कारण से लज्जित नहीं होना पड़ेगा, किसी भी बात के लिए लांछन नहीं सहना पड़ेगा, लेकिन कभी ऐसा अवसर न मिला जो उससे कुछ कह सकता, उसका दर्द हल्का कर सकता।

काफी समय बाद एक बार मैं शाम के समय ऊपर छत पर टहल रहा था। रीता अपनी छत पर खड़ी हुई थी और मुन्नू उसका हाथ पकड़े हुए था। मैं यह देखकर अपने कमरे में आया और एक छोटा-सा पत्र झटपट लिखकर उसको पूछा कि वह क्यों मुझसे वह सब कुछ नहीं बता देती, जिसकी वजह से अब मुझसे इतनी दूर-दूर रहने लगी है। वह नहीं समझ सकेगी कि मेरे दिन और रात किस तरह से चिन्ता और आशंका में बीतते हैं। मैंने उसे बार-बार आश्वासन दिया कि वह किसी बात के लिए कतई चिन्ता न करे, क्योंकि अगर कुछ भी गलत हुआ है, तो उसमें सारा दोष मेरा है और मैं उसे

स्वीकार करने को हर समय तैयार हूं। साथ ही मैं अपनी ज़िम्मेदारी भी खूब अच्छी तरह समझता हूं। अगर कभी कोई अवसर पड़े, तो मैं उस-पर ज़रा भी दोष न लगने दूंगा, सारा पाप अपने ऊपर ओढ़ लूंगा। अन्त में, मैंने लिखा था कि इस सारी बात के बावजूद कम से कम वह मुझसे घृणा न करे और सब कुछ साफ-साफ बता दे। शायद मैं उसकी परेशानी दूर करने में कुछ सहायता कर सकूं। और अगर वह ऐसा न करेगी, तो मैं कभी भावावेग में अपना भला-बुरा करने में भी नहीं चूकूंगा।

पत्र लिखकर मैं छत पर आया। देखा, अब भी रीता मुन्नू के साथ वैसे ही चुपचाप खड़ी हुई थी। मैंने हाथ का इशारा करके चुपके से मुन्नू को बुलाया और उसे चिट्ठी देकर कहा, "यह कागज़ अपनी रीता जीजी को दे दो।"

उसने वैसा ही किया। मैंने देखा कि खत लेकर वह कमरे के अन्दर जाकर उसे अपने आंचल की ओट में छिपाकर पढ़ने लगी।

मैं प्रतीक्षा में खड़ा रहा। दो-तीन मिनट के बाद वह कमरे के बाहर निकली और करुण दृष्टि से मेरी तरफ ताकने लगी। मैंने फिर उससे इशारे से पूछना चाहा। लेकिन अब तक शायद उसके धैर्य का बांध टूट चुका था। मैंने साफ देखा, उसकी आंखों में एकाएक ही जैसे आंसुओं की बाढ़-सी आ गई। वह अपनी धोती के पल्ले में मुंह छिपाकर नीचे भाग गई।

मैं अवाक् खड़ा देखता रह गया।

मेरे दिन भीषण पश्चात्ताप की अवस्था में बीत रहे थे। हर समय मैं चिंता से व्याकुल रहता था। रीता का करुणापूर्ण मुख देखकर मेरे सीने में सुइयां चुभने लगती थीं। यद्यपि मुझे निश्चित रूप से कुछ नहीं मालूम हुआ था, लेकिन मैंने उसकी स्थिति का कुछ-कुछ

अनुमान लगा लिया था। मैं उसके संपूर्ण दुर्भाग्य के लिए अपने-आपको ज़िम्मेदार समझता था और हमेशा यही सोचा करता था कि मैं ऐसा कौन-सा काम कर डाल सकता हूं, जिससे रीता का पीछा इस विपत्ति से छुड़ा सकूं।

मेरा यह अनुमान अब धीरे-धीरे पक्का होता जा रहा था कि रीता के घरवालों को अब सब कुछ मालूम हो गया है, क्योंकि एक दिन मुझे उड़ती-उड़ती-सी यह खबर मिली थी कि उसके मां-बाप उसके विवाह के सम्बन्ध में अब बहुत अधिक शीघ्रता कर रहे हैं। अब तक शायद लड़का वगैरह भी देख लिया गया था और विवाह का मुहूर्त भी निकलवा लिया गया था। मैं अब यह भी देखता था कि रोज़ उसके घर में हलचल बढ़ती जा रही थी, जैसीकि शादी-ब्याहवाले घरों में हुआ करती है। लेकिन मैं करीब-करीब हर बात से अनभिज्ञ-सा था और मेरी स्थिति कुछ ऐसी थी कि किसीसे कुछ पूछ न सकता था।

एक बार खाना खाते समय मैंने बहुत दबी ज़बान से माताजी से रीता के विवाह की चर्चा की थी। उन्होंने मुझपर कोई शक तो नहीं किया था, लेकिन मैंने स्पष्ट देखा था कि उसके विवाह के संबंध में पूछने पर उन्होंने एक बार कठोर दृष्टि मुझपर डालकर मन ही मन कुछ बड़बड़ाना शुरू कर दिया था। उनके क्रोध को देखकर मैं यह समझ गया था कि वे इस प्रसंग को किसी भी प्रकार से पसंद नहीं करती थीं। उनकी बातों से भी स्पष्ट था कि वे रीता को एक पतित लड़की समझती थीं।

खाना खाते-खाते एकाएक मेरे हाथ रुक गए। मेरे हृदय में भीषण अंतर्द्वन्द्व मचने लगा था। मेरी मां को क्या मालूम था कि रीता के सारे पाप-चरित्र का मूल कारण मैं ही था। उनका लाड़ला, दुलारा और भोला बेटा। वे अपनी दृष्टि में मुझे कितना निष्कलंक

समझती थीं और मैं कितना पतित था !

फिर भी रीता के सम्बन्ध में वैसा सुनकर मेरा खून जमने लगा। मैंने एक बार सोचा कि मैं मां के पैरों पर गिरकर क्षमा मांगते हुए उन्हें सारी बातें बता दूं और उनसे यह प्रार्थना करूं कि किसी प्रकार से रीता का उद्धार करें। लेकिन यह सब मैं मन में ही सोचकर रह गया, कुछ बोल न सका।

थोड़ी ही देर में मैं उदास-सा खाना छोड़कर उठ खड़ा हुआ। मेरी मां कुछ भी न समझ पाईं ; बल्कि उन्होंने इसका कुछ और ही अर्थ लगाया। यह मुझे दूसरे दिन मालूम हुआ जब मैंने देखा कि मेरी शादी की बातचीत भी वे काफी तेज़ी और गंभीरता से चला रही हैं। और अपनी जानकारी में इस बात के आते ही मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि मुझे विवाह नहीं करना है।

"क्यों ?" उन्होंने कुछ क्रोध और आश्चर्य से पूछा।

"पहले मैं एम० एस-सी० पास कर लेना चाहता हूं···" हृदय में उठते अनेक भावों को बड़ी कठिनाई से दबाकर काफी धैर्यपूर्वक मैंने उनसे कह दिया।

और अंत में वही होकर रहा, जो होना था।

यानी, रीता के विवाह की तिथि आ गई और वह ससुराल चली गई। अपने हृदय की समस्त भावनाओं को दबाए हुए मैं भी उसके विवाह में सम्मिलित हुआ या सम्मिलित होने को विवश हुआ। आप सच मानिए, उन दो-तीन दिनों में बीती हुई एक-एक घटना अब भी मेरे आंखों के सामने स्पष्ट है। जब गली में शहनाई बज उठी थी, तब मेरे सीने पर जैसे कोई हथौड़े चलाने लगता था।

विवाह की एक-एक विधि सम्पन्न हुई। रीता हाथ-पैरों में मेंहदी लगाए, बहू की तरह एक विशेष प्रकार की चोटी गूंथे हुए, हाथों में

सुहाग की लाल, मोटी चूड़ियां पहने, पीली साटन का लहंगा और गुलाबी चुंदरी ओढ़े हुए, लम्बा-सा घूंघट काढ़े दुलहिन बनी हुई, आठ-आठ आंसू रोती और पछाड़ें खाती हुई विदा हुई। उस वक्त मेरे दिल पर क्या गुज़री, यह बताना कठिन है। उस समय मेरा कलेजा एक अजीब-सी दहशत से दहल-सा रहा था। मैं ईश्वर से अपने समस्त पापों के लिए क्षमा मांगता हुआ उसके लिए मंगल-कामना कर रहा था। इसका कारण यह था कि मुझे ऐसी आशंका बराबर हो रही थी कि उसके वैवाहिक जीवन में कोई बड़ी दुर्घटना घटेगी।

विदाई के समय मैं भी उसे पहुंचाने स्टेशन गया। बहुत चाहने पर भी उससे दो बातें करने का अवसर न मिला था, इसलिए मन बहुत भारी था। मैं अपने मन में एक तूफान-सा दबाए हुए था। वह चुपचाप गाड़ी में एक कोने की ओर मुंह किए बैठी थी।

अंत में, जब ट्रेन छूटी, तो मैंने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए, हाथ हिलाते हुए विदा लेनी चाही। मैं समझ रहा था कि शायद यह उससे अंतिम विदा होगी, और मैं उसे न देख पाऊंगा; परन्तु काश, यदि वैसा हो पाता और मैं उसे फिर कभी न देखता और उसे देखने की आशा हमेशा ही अपने मन में लिए रहता...तब मुझे वह वितृष्णा और पश्चात्ताप न होता जोकि आज हो रहा है।

रीता ने मेरे हाथ हिलाने पर कोई उत्तर नहीं दिया, केवल उसके टपाटप गिरते आंसू तेज़ हो गए थे और धीरे-धीरे गाड़ी की रफ्तार भी तेज़ हो गई थी।

सात

रीता के विवाह के बाद लगभग छः महीने बीत गए। इस समय के बीच अप्रत्यक्ष रूप से मैंने उसके विषय में सूचना पाने के अनेक प्रयत्न किए, लेकिन कोई विशेष परिणाम न निकला। विविध प्रकार की मन:स्थितियों में रहा और अनेक प्रकार के विचारों से मैंने संघर्ष किया। यहां तक कि इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि मेरा स्वभाव ही कुछ अजीब तरह का हो गया और मैं चीज़ों को एक अजीब ढंग से देखने लगा।

छः महीने तक यही स्थिति रही। उसके बाद मुझे अपनी एक मौसेरी बहिन का एक पत्र मिला जो दिल्ली में ही रहती थीं और रीता के पति से उनका कोई रिश्ता भी निकलता था। रीता भी दिल्ली में ही ब्याही थी और उनके निकट ही कहीं रहती थी। अब मैं आपको वह पत्र सुनाता हूं :

रमेश भैया,

आज से छः महीने पहले जब यहां रीता ब्याह कर आई थी, तब मैंने स्वप्न में भी यह न सोचा था कि उसका तुमसे कोई परिचय या सम्बन्ध रहा होगा। उस समय वह एक भोली-भाली, नासमझ और अल्हड़ लड़की थी। कम से कम मैंने उसे ऐसा ही समझ रखा था।

रीता का पति योगेन्द्र मेरी निगाह में कोई बहुत चरित्रवान युवक नहीं कहा जा सकता, लेकिन शायद बहुत चरित्रहीन भी नहीं। हम लोगों के यहां आम तौर से उमर आने पर लड़कों का जो रवैया रहता है और शादी के बाद जिस तरह से वे ठीक रास्ते पर लग जाते हैं, वैसा ही योगेन्द्र के बारे में भी मैं समझती रही थी, और इसके अलावा मुझसे तो वह हमेशा से बहुत ही आदर और शिष्टता का व्यवहार करता रहा है। वह मेरी मां का कोई संबंधी लगता है और मुझे हमेशा बहिनजी पुकारता है। इसीलिए जब रीता यहां ब्याह कर आई, तब मैं भी उसको देखने गई। उसका स्वभाव और शील मुझे इतना पसंद आया कि मैं अक्सर उससे मिलती रही और वह भी धीरे-धीरे मेरे निकट आने में प्रसन्नता का ही अनुभव करती रही। इसलिए कुछ ही दिनों में हम दोनों एक-दूसरे से काफी खुल गईं।

इलाहाबाद की चर्चा चलने पर कभी-कभी मैं तुम्हारा नाम लेकर तुम्हारे बारे में भी ज़िक्र कर देती थी और उसे यह बताना चाहती थी कि तुम मेरे संबंधी लगते हो। शुरू में जब भी तुम्हारा नाम हमारी बातचीत में आता था तो रीता एकाएक कुछ सकपका-सी जाती थी। एक-दो बार तो मैं कुछ न समझ सकी, लेकिन जब कई बार मैंने वैसा ही पाया, तो मुझे कुछ संदेह होने लगा। वह तुम्हारा नाम सुनते ही कभी-कभी पीली तक पड़ जाती थी। उसका शरीर कांपने लगता था और उसकी आवाज़ भारी हो जाती थी। कभी-कभी तो उसका मुंह बिलकुल सफेद हो जाता था और वह उसी हालत में विस्फारित नेत्रों से मुझे कुछ इस तरह से ताकने लगती थी, मानो मैं उसका कोई बहुत गुप्त भेद जान गई होऊं।

कुछ दिनों तक तो मैं सब कुछ टालती रही। यद्यपि मुझे यह संदेह आरम्भ में ही हो गया था कि कोई बहुत गंभीर बात है, परन्तु सहसा किसीसे इस विषय में कुछ पूछना या कहना उचित न होगा,

यही सोचकर मैं कुछ न कहती-सुनती थी। परन्तु रीता के ऊपर मैं यह प्रतिक्रिया बराबर देख रही थी कि दिन बीतने के साथ ही साथ वह ज़्यादा घबराने लगी थी और एक तरह की आशंका से बराबर भयभीत रहती थी। अब मैंने निश्चय कर लिया कि केवल अपने कौतूहल को शांत करने के लिए ही नहीं, वरन् अपने कर्तव्य का निर्वाह करने के लिए भी मुझे इस विषय में बात अवश्य करनी चाहिए। परन्तु किसी गंभीरता की आशंका से मैं उसकी सास के सामने यह प्रसंग नहीं छेड़ना चाहती थी, इसीलिए टालती रहती थी।

एक बार मुझे अवसर मिला। उस दिन रीता की सास कहीं गई हुई थी और मैं उसके यहां दोपहर के समय पहुंची थी। अकेली पाकर मैंने उससे इस विषय में साफ-साफ पूछा।

मैंने देखा कि मेरा निश्चयात्मक प्रश्न सुनकर ज़रा देर के लिए रीता का चेहरा बिलकुल फक् हो गया। वह भयभीत होकर इधर-उधर ताकने लगी और फिर ज़ोर से झपटकर एकाएक मेरे गले में लिपट गई। अपने-आपपर वह काबू न रख सकी और सिसक-सिसककर रोने लगी। उसे रोता देखकर और साथ ही यह अप्रत्याशित व्यवहार देखकर मैंने उसे धीरज बंधाना चाहा, तो वह और भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उसकी हिचकियां मेरे समझाने पर भी नहीं रुकीं।

इधर कुछ दिनों से मैं रीता के घर में भी कुछ अजीब-सी स्तब्धता का वातावरण देख रही थी। उस समय शांति इसलिए थी कि रीता का पति योगेन्द्र दफ्तर गया हुआ था और उसकी सास भी किसी सम्बन्धी के घर गई थी। मैंने प्यार से रीता के सिर पर हाथ फेरते हुए उससे पूछा, "यह क्या रीता? यह आजकल तुम्हें क्या होता जा रहा है?"

"मेरी तबियत बहुत घबराया करती है, दीदी।" उसने उसी प्रकार से मेरे गले से लगे हुए और सिसकते हुए कहा।

मैं इधर साफ देख रही थी कि रीता का पांव भारी है और ऐसी हालत में उसे न सिर्फ अधिक आराम करने की ज़रूरत है वरन् उसे दिमागी परेशानियों से भी बचना ज़रूरी है। लेकिन उसके घर की हालत यह थी कि दिन-भर के कार्यक्रम में किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं आया मालूम पड़ता था। एक बार मैंने बातों ही बातों में इशारे से उसकी सास से यह कहा भी था कि रीता को अब भारी चीज़ें नहीं उठानी चाहिए और ज़रा सावधानी से रहना चाहिए, लेकिन उन्होंने उपेक्षा से मेरी बात सुनी-अनसुनी कर दी थी। मुझे उस समय यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि कोई सास अपनी एक-मात्र बहू के प्रथम बार गर्भ धारण करने पर भी ऐसी उदासीनता उसकी ओर से कैसे दिखा सकती है और उससे इतनी मेहनत करा सकती है। लेकिन अधिकारपूर्वक इस विषय में उससे कुछ कहना शायद मेरी ओर से अनुचित ही होता, इसीलिए मैं न चाहते हुए भी चुप रह गई।

इसके कुछ दिनों बाद मैं फिर एक बार रीता के घर गई थी। उस समय योगेन्द्र थोड़ी ही देर पहले दफ्तर जा चुका था और उसकी सास नीचे चौके में खाना खा रही थी। मैं सीधी ऊपर जाकर रीता के कमरे में घुस गई और अन्दर रीता की जो हालत देखी, उसे देखकर चौंककर रह गई। कमरे में रीता ज़मीन पर बैठी हुई थी और पलंग पर अपना सिर अपनी बांहों में छिपाए हुए टिकाए थी। उसकी साड़ी अस्त-व्यस्त थी और पीठ पर ब्लाउज़ के नीचे और बांहों के ऊपर कुछ सूजन के निशान थे, जैसे किसीने पीटा हो।

मैं यह देखकर अवाक् रह गई। मेरे पैरों की आहट पाकर रीता ने अपना आंसुओं से भीगा हुआ मुंह उठाया और रोती हुई मेरे गले से लिपट गई। मैंने अपनी सारी ताकत से उसे अपने कलेजे से चिपका लिया, जैसे कोई अपनी संतान को चिपका लेता है।

मुझे उस समय उसकी वैसी हालत देखकर बहुत क्रोध आया : 'क्या योगेन्द्र इतना नीच हो सकता है कि रीता जैसी सुशीला पत्नी पर हाथ उठाए ? और क्या उसकी सास इतनी कठोरहृदया हो सकती है जो अपनी गर्भवती पुत्रवधू पर इतना अत्याचार होते देखकर भी चुप रहे ?'

ज़रा देर के लिए जैसे मैं पत्थर-सी बनी रह गई। बाद को मैंने रीता को काफी समझाया-बुझाया और उसके अंगों को धीरे-धीरे सहलाने लगी।

रमेश, उस दिन मेरे बहुत आश्वासन दिलाने पर, मुझपर विश्वास करके रीता ने मुझे कुछ बीती हुई बातें और तुम्हारे प्रति अपनी पूर्व भावनाएं बताई थीं। क्षण-भर को तो मैं यह सब सुनकर सन्न-सी रह गई, लेकिन शीघ्र ही मैं संयत होने लगी थी और मैंने मन ही मन अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया था।

रीता ने मुझे यह भी बतलाया था कि योगेन्द्र उसे पतिता समझता है और इसीलिए बड़ी निर्दयता से उसको मारा-पीटा करता है। उसकी सास का व्यवहार भी उसके पति से भिन्न नहीं था।

रमेश, मैं रीता को अपनी छोटी बहिन की तरह मानती हूं। मैं तुमसे सच कहती हूं कि अगर मैं अपना कलेजा चीरकर तुम्हें दिखा सकती, तो तुम देखते कि उसमें रीता के लिए कितना स्थान बन चुका है और मैं उसके लिए क्या कुछ करने को तैयार हूं। सच पूछो तो मैं उसका यह दुःख ज़रा भी नहीं देख सकती और उसे इस नरक से छुटकारा दिलाने के लिए कुछ भी करने को तैयार हूं।

लेकिन मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि इस समय मैं एका-एक क्या करूं। हां, इतना मैंने ज़रूर दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अवसर पड़ने पर उसके लिए, जो कुछ भी करना पड़ेगा, उसके लिए मैं तैयार रहूंगी। फिलहाल मैं यह सोचती हूं कि मुझे योगेन्द्र से कोई

उपयुक्त अवसर मिलने पर रीता के संबंध में बातचीत करने के लिए तैयार रहना चाहिए ; और उस समय मैं उसे हिदायत दूंगी कि भविष्य में रीता के साथ ऐसा निर्दय और कठोर व्यवहार न करे। मैं यह आशा करना चाहती हूं कि वह मेरा जितना आदर करता है, उसे देखते हुए उसे मेरी बात पर अवश्य ध्यान देना और उसे मानना चाहिए। लेकिन जैसीकि काफी संभावना है और मेरे सामने स्थिति है, यदि उसने वैसा न किया और फिर भी इसी प्रकार से रीता पर अत्याचार करता रहा, तो मैं अवश्य ही उसे अपने घर ले आऊंगी।

मैं तुम्हें यह पत्र रीता की इच्छा के विरुद्ध लिख रही हूं ; क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसके दुर्भाग्य की छाया तुम तक पहुंचे और तुम्हें व्यर्थ ही पीड़ा पहुंचाए। लेकिन मैं इस समय स्थिति की गंभीरता को भली भांति समझ रही हूं। वह यहां तक है कि योगेन्द्र रीता को तलाक देने का विचार कर रहा है। हालांकि इस विषय में मैंने सिर्फ उड़ती-उड़ती खबर ही सुनी है और इसलिए निश्चित रूप से इसपर कुछ नहीं कहा जा सकता। और ईश्वर न करे ऐसा हो, लेकिन अगर ऐसा हुआ तो रीता मेरे घर आ जाएगी और तुम्हें हमेशा के लिए उसका हाथ पकड़ना होगा। क्या तुम स्वयं भी यह नहीं चाहते और ऐसा होने पर प्रसन्न नहीं होगे ? मेरा विचार है कि पश्चात्ताप और आत्मग्लानि से बचने के लिए इससे बढ़कर और कोई बात नहीं हो सकती।

अंत में, मैं तुम्हें यह बात स्पष्ट बता देना चाहती हूं कि परि-स्थितियां बहुत ही खतरनाक हैं और यह बहुत संभव मालूम होता है कि मैं बहुत शीघ्र ही रीता को अपने घर ले आऊं। उसका उस घर में अब अधिक समय तक रह सकना मुझे होता नहीं दिखाई देता। वैसी हालत में किसी भी समय तुम्हारी और तुम्हारी सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है। अतः तुम मेरे अगले पत्र की प्रतीक्षा करना

और मेरे बुलाने पर बिना एक भी पल का विलंब किए हुए फौरन यहां चले आना।

आशा है, स्वस्थ हो।

तुम्हारी बहिन
शारदा

इस पत्र के मिलने के लगभग पन्द्रह दिनों के बाद ही शारदा जीजी का दूसरा पत्र भी आ पहुंचा। वह भी सुनिए :

प्रिय रमेश,

मेरा पिछला पत्र लगभग एक पखवारे पहले तुमको मिला होगा। यद्यपि उसमें ऐसी कोई बात नहीं थी, जिसका उत्तर पाने की मैं तुमसे आशा करती, लेकिन फिर भी, रीता के सम्बन्ध में इतनी बातें जान-कर भी तुम्हारा बिलकुल मौन रह जाना मुझे आश्चर्यजनक ही लगा। खैर।

तो रमेश, सुनो। जिस बात का भय था, अंत में वही होकर रहा। एक दिन मैं योगेन्द्र के घर गई हुई थी, तीसरा पहर था—चार-साढ़े चार का समय था। मैं रीता के साथ ऊपर के कमरे में बैठी बातें कर रही थी। इतने में योगेन्द्र ने बाहर का दरवाज़ा खटखटाया। रोज़ वह दरवाज़ा बंद रहता था, लेकिन चूंकि आज मैं ही अभी थोड़ी देर पहले वहां आई थी अतः वह खुला होकर ऐसे ही भेड़ा हुआ था। योगेन्द्र ने जब खटखटाया तो रीता नीचे नहीं गई। उसने सोचा कि दरवाज़ा तो खुला ही है, अपने-आप ही ढकेलने से खुल जाएगा। लेकिन हुआ यह कि योगेन्द्र ने दरवाज़े को ढकेलकर उसे खोला नहीं, योंही काफी देर तक कुंडी बजाता रहा। आखिर को रीता उठकर नीचे जाने लगी थी, लेकिन मैंने ही उसका हाथ पकड़कर रोक लिया; कहा, "दरवाज़ा खुला हुआ तो है ही, आ जाएंगे।"

पांच-सात मिनट तक यों ही खड़े रहने के बाद योगेन्द्र ने क्रोध में आकर ज़ोर से दरवाज़े को ढकेला और धड़धड़ाता हुआ ऊपर आया। वह नीचे से ही रीता को बहुत अशिष्ट और भद्दी गालियां सुनाता आ रहा था। मुझे यह देखकर बहुत बुरा मालूम हुआ। लेकिन मैंने यह सोचा कि जब वह ऊपर आएगा और मुझे यहां बैठे देखेगा तो अपने व्यवहार के लिए स्वयं ही लज्जित होगा और माफी मांग लेगा। लेकिन ऊपर आने पर और वहां पर मुझे बैठे देखकर उसने रीता को गालियां देना बराबर जारी रखा। और यही नहीं, वह एक लम्बी बेंत की लकड़ी उठाकर उसे पीटने पर भी तुल गया। बड़ी कठिनाई से मैं उसको उस दिन उससे रीता को पिटने से बचा पाई।

मैंने इतने दिनों तक सब कुछ बराबर देखते रहने पर भी योगेन्द्र या उसकी मां से रीता के विषय में कोई साफ बात न की थी, हालांकि मैं बहुत दिनों से यह चाह रही थी कि एक दिन उन दोनों से यह स्पष्ट पूछ लिया जाए कि आखिर वे क्या चाहते हैं और किस कारण से उसको इतनी यातना दे रहे हैं। परन्तु मैं हमेशा यही सोचकर इस अवसर को टालती रही थी कि मैं स्वयं ही क्यों रीता के दुर्भाग्य का कारण बनूं।

लेकिन आज के योगेन्द्र के व्यवहार को देखकर मैं अपने-आपको वश में न रख सकी। मेरी आंखें आज खुल गईं और मुझे रीता की दशा सुधरने की कोई आशा न दीख पड़ी। सच पूछो तो आज का रीता के प्रति उसका व्यवहार इतनी पाशविकता और असभ्यता का था, जिसकी मैं कभी आशा भी नहीं कर सकती थी।

मैंने कड़े शब्दों में योगेन्द्र से पूछा कि वह मुझे साफ-साफ बताए कि वह ऐसे नीच काम को करने के लिए कैसे साहस करता है, जब उसकी पत्नी की हालत इतनी नाजुक है।

यह सुनते ही उसने घृणा से अपना मुंह बिचका लिया। उसकी आंखें तिरछी हो गईं और वह उपेक्षा और तिरस्कार के साथ मुझसे बोला, "तुमसे कोई मतलब नहीं !"

अभी तक वह मुझसे आप-आप करके बात करता था। अतः उसका बात करने का यह अपमानजनक ढंग देखकर मैं आपे से बाहर हो गई।

"मतलब है !" मैंने चिल्लाकर कहा और झपटकर उसके सामने आकर खड़ी हो गई। मैंने उसके मुंह पर तमाचा मारने को भी हाथ उठाया था, लेकिन फिर न जाने क्या सोचकर वैसा नहीं किया।

यह देखकर वह चुपचाप मेरे सामने से बड़बड़ाता हुआ चला गया। लेकिन उसके बड़बड़ाने का मतलब समझकर मैं सन्न रह गई। वह रीता को पतित समझता था और साथ ही मेरा भी उसमें कुछ हाथ मानता था। और यह भी शक था उसे कि मैं रोज़ उसके घर पर पहुंचकर रीता को बहकाया करती हूं।

चूंकि वह उस दिन खुद ही मेरे सामने से चला गया, इसलिए मैंने आगे कुछ नहीं कहा, लेकिन बाद में मैं एक दिन फिर उसके यहां गई और उसकी मां से साफ-साफ बातें की। उनसे क्या बातचीत हुई और रीता के पति और सास ने उसको लांछित करते हुए क्या-क्या कहा, यह सब तुम्हें लिखने की आवश्यकता नहीं है। बस, तुम इतना ही जान लो कि उन्होंने उस दिन मुझसे साफ-साफ कह दिया कि वे अब रीता के साथ किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते हैं, और यही चाहते हैं कि या तो वे उसे विधिवत् तलाक दे दें और या उसके घर से आकर उसे कोई ले जाए, और या वह जहां उसकी इच्छा हो जाए।

मैंने रीता के सामने ही उनकी सब बातें सुनीं और उनसे कहा, "रीता मेरी छोटी बहिन के बराबर है। आप उसे यहां रखना चाहते

हैं या नहीं, यह आपकी बात है, लेकिन जिस तरह से उसको यहां रखा जा रहा है, उसको देखते हुए मैं खुद ही उसका यहां रहना ठीक नहीं समझती और यह चाहती हूं कि अब वह एक दिन भी यहां न रहे और इसलिए मैं उसको अपने घर ले जाना चाहती हूं।"

मेरे इस प्रस्ताव को सुनकर रीता चौंक पड़ी। पहले ही वह अपने पति और सास की बातों को सुनकर कांप रही थी। लेकिन योगेन्द्र और उसकी मां को मेरी बात सुनकर बहुत खुशी हुई और उन्होंने मेरे प्रस्ताव का स्वागत किया। वैसे रीता वहीं रहना चाहती थी, लेकिन मैं ही उसे काफी समझा-बुझाकर अपने यहां ले आई।

रमेश, मैं तुम्हें पहले ही बता चुकी हूं कि रीता की हालत आजकल कैसी है। मैं फिर तुमसे यह कह देना चाहती हूं कि रीता ने अब भी मुझसे बार-बार यही कहा है कि मैं तुम्हें कुछ भी लिखकर परेशान न करूं। लेकिन मैं यह अच्छी तरह समझती हूं कि तुम्हारे प्रति अब भी वह किस प्रकार की भावना रखती है।

तुम मेरे छोटे भाई हो। मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया है और मैं समझती हूं कि अब तुम्हारे लिए अपना कर्तव्य पूरा करने का समय आ गया है।

क्या तुम अब भी इस बात की आवश्यकता समझते हो कि मैं तुम्हें यह भी लिखूं कि अब तुम्हें क्या करना होगा। मेरा विचार है कि अपना कर्तव्य तुम मुझसे ज्यादा अच्छी तरह समझते होगे। इसलिए मैं तुमसे यह आशा करती हूं कि तुम फिलहाल यह पत्र पाते ही फौरन यहां पर चले आओगे, क्योंकि रीता की हालत इस समय बहुत नाज़ुक है।

बाकी बातें यहां आने पर,

तुम्हारी बहिन
शारदा

आठ

रीता के दुर्भाग्यपूर्ण भविष्य की तो मुझे पहले से ही आशंका थी, लेकिन वह घड़ी इतनी शीघ्र आ जाएगी, ऐसी आशा मुझे न थी और वह भी विशेष रूप से उस समय, जबकि स्वयं मेरी स्थिति में भी भारी परिवर्तन हो चुका था। अब मैं विश्वविद्यालय का एक साधारण छात्र नहीं रह गया था, बल्कि एक ऊंचे और ज़िम्मेदारी के पद पर अच्छे वेतन पर काम कर रहा था। इतना ही नहीं, जिन सज्जन की कृपा से मेरा यह कायापलट हुआ था, उन्हींकी सुपुत्री से शीघ्र ही मेरा विवाह भी होनेवाला था।

शारदा जीजी के दूसरे पत्र से यह साफ ध्वनि निकलती थी कि मुझे वहां फौरन पहुंच जाना चाहिए और यथासंभव रीता से विवाह कर लेना चाहिए। और एक तरह से देखा जाए तो मेरा कर्तव्य भी इस समय यही था। साथ ही, रीता का मेरे हृदय में जो स्थान था, उसको देखते हुए मैं इस कर्तव्य को पूरा करके और रीता को स्वीकार करके प्रसन्न भी होता। लेकिन जो परिस्थिति उस समय मेरे सामने थी, उसमें मेरे कुछ और भी कर्तव्य थे।

बात वास्तव में यह थी कि प्रारंभ में रीता के ब्याह के बाद जब वह ससुराल चली गई थी, तब मेरे हृदय पर कठोर आघात लगा था। मैं बहुत हताश हो गया था और कुछ दिनों तक तो बिलकुल

पूरी तौर से एक अजीब-सी सूनेपन की स्थिति में खोया-खोया-सा जीता रहा था। किसी भी काम में मेरी रुचि नहीं होती थी, किसीसे बात करने को जी नहीं चाहता था और कुछ भी अच्छा न लगता था। और इसपर विडम्बना यह कि बजाय कोई मेरी पीड़ा को समझता और मेरे साथ सहानुभूति प्रकट करता, लोग इसका दूसरा ही मतलब समझने लगे। और मेरी मां ने मेरी इस उलझन का अर्थ यह लगाया कि मैं विवाह करने की इच्छा रखता हूं। वे स्वयं भी पहले से यही चाहती थीं। यही कारण है कि उन्होंने सहर्ष इस ओर ध्यान दिया। और फिर जब एक बार एक स्थान से विवाह के प्रस्ताव के साथ ही साथ कुछ और भी आश्वासन आए और वे कुछ इस तरह से पूरे होने शुरू हो गए कि पंद्रह दिन के भीतर ही मुझे साढ़े चार सौ रुपये महाने की नौकरी मिल गई, तो मां ने जल्दी से औपचारिक रूप से लड़की देखी और विवाह की हामी भरके जो सबसे पहली तारीख निकलती थी, उसीको मान लिया। ज़ोर-शोर से तैयारियां होने लगीं, क्योंकि मैं निखट्टू या विद्यार्थी वर नहीं था, एक बड़ा अफसर था। जहां तक मेरे लड़की देखने का सम्बन्ध था, मां ने वहां से फोटो मंगवाकर मुझे दिखा दी और जब मैंने कोई सहमति-असहमति न प्रकट की, तो यह समझ लिया गया कि लड़की मुझे पसन्द है।

टीके वगैरह की विधि सम्पन्न हो गई; अन्य कार्य भी जल्दी ही कर लिए गए और और उसी महीने में मेरे विवाह की तिथि निश्चित हो गई।

ऐसी असाधारण परिस्थिति में मुझको जब रीता की इस दशा का पता चला और शारदा जीजी की तरफ से वैसा प्रस्ताव आया, तब मेरा मन फिर से कुछ समय के लिए डांवाडोल हो गया। रीता को खो देने के बाद मैं अपनी मूर्खता पर पछताने लगा था। अब मुझमें

जीवन के प्रति एक विचित्र प्रकार की तटस्थता-सी आ गई थी और मैंने अपने-आपको पूरी तौर से परिस्थितियों के हवाले कर दिया। पहले मैंने हमेशा के लिए रीता को गई समझ लिया था और इसके लिए मैं पूरी तरह से अपने-आपको ही ज़िम्मेदार समझता था, लेकिन अब मुझे ऐसा लगा जैसे अब भी मैं रीता को पा सकता हूं और इस तरह से न केवल अपनी खोई हुई भावनाओं को लौटा ला सकता हूं, वरन् अपनी भूल का प्रायश्चित्त भी कर सकता हूं। इसके अलावा मेरी स्थिति इस समय ऐसी हो रही थी कि एक ओर रीता के लिए मेरे हृदय में अथाह प्रेम था और मैं उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार था, यहां तक कि मैं होनेवाले विवाह-सम्बन्ध को तोड़ने और नौकरी तक छोड़ने के लिए प्रस्तुत था जोकि व्यावहारिक दृष्टि से बहुत बड़ी बात थी। इसके साथ ही मेरे बूढ़े मां-बाप की सारी आशाओं पर भी इससे पानी फिर जाता और अपने होनेवाले ससुर से भी हमेशा के लिए सम्बन्ध बिगड़ जाता। लेकिन मैं इस सारी कीमत को देने के लिए प्रस्तुत था। फिर मैं यह भी सोचता था कि वैसा होने से मेरी भावी पत्नी की भी बदनामी होगी और फिर शायद दूसरी जगह भी उसका विवाह मुश्किल से होता। यों मेरे होनेवाले ससुर काफी समर्थ थे; और जिस तरह से चुटकी बजाते हुए उन्होंने मुझे नौकरी दिलवाई थी, उसी तरह से मुझे नौकरी से अलग करवाकर किसी दूसरे को भी वही जगह दिलवा सकते थे।

मैं भयानक खींचातानी की अवस्था में था और यह सोचने और निर्णय करने में अपने-आपको कतई असमर्थ पा रहा था कि इस समय कौन-सा मार्ग मुझे अपनाना चाहिए। मेरे सामने दो रास्ते थे। एक तो यह कि जिस तरह से मेरी ज़िन्दगी गुज़र रही थी, उसी तरह से उसे गुज़रने देता और अपना विवाह करके जीवन-भर नौकरी करता; गृहस्थी का सुख देखता। और दूसरा यह कि इलाहाबाद से

हमेशा के लिए सम्बन्ध तोड़कर दिल्ली चला जाता और वहां रीता को स्वीकार करके समाज से संघर्ष करने को तैयार हो जाता और हर प्रकार के खतरे से भिड़ता रहता।

मुझे इन दो रास्तों में से एक को चुनना था, और वह भी बहुत ही जल्दी।

लेकिन मैं कुछ भी तय न कर पाया और इसी उधेड़बुन में धीरे-धीरे एक सप्ताह का समय किसी तरह से बीत गया और पता भी न चला। इस पूरे एक सप्ताह के दौरान में मैं एक भी दिन नींद-भर न सो सका, खाने-पीने की कौन कहे। हर वक्त एक तरह से झूले में झूलता रहता था। कभी अपने मां-बाप के प्रेम और बुढ़ापे का ख्याल करता था और कभी उस रीता का, जिसका जीवन मेरे कारण बर-बाद हो चुका था और अब जिसकी एकमात्र आशा मैं ही था।

यों परिस्थितियों को देखते हुए मैंने अपनी जीवनधारा को उसी तरह से बहने देने का विचार कर लिया था, जिस प्रकार से वह बह रही थी; और एक तरह से रीता का ध्यान अपने मन से हटा देने का भी निश्चय कर लिया था, यद्यपि बराबर ही मैं यह सोचता था कि ऐसा संभव भी होगा या नहीं।

और वास्तव में होना कुछ और ही था।

मेरे विवाह के अब केवल आठ दिन बाकी रह गए थे। अचानक एक दिन मुझे शारदा जीजी का तार मिला कि रीता की हालत बहुत खतरनाक है, फौरन चले आओ।

अब तक मैं अपने मन को धोखा दे रहा था और अपने-आपको इस भुलावे में रखना चाह रहा था कि मैं रीता को अपने ध्यान से हटा दे सकता हूं, लेकिन इस तार ने उसे निरा भ्रम सिद्ध कर दिया।

मेरे मां-बाप क्या सोचेंगे, मेरे ससुर क्या करेंगे, मेरी नौकरी का

क्या होगा और उस बेचारी का क्या होगा, जिस अभागिन का ब्याह मुझसे होनेवाला है ? इन सब बातों में से किसीपर भी विचार न करके और कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर मैं उसी वक्त रात को मिलनेवाली पहली गाड़ी से दिल्ली के लिए रवाना हो गया ।

मेरा जितना समय गाड़ी पर बीता, बराबर उतने समय तक मेरी छाती एक तरह के हौके से धड़कती रही। मेरा हृदय किसी भयानक अनिष्ट की आशंका से कांप-कांप उठता था। सारी रात मेरी आंख तक नहीं झपकी। मैं जड़वत् बैठा रहा। जिस समय गाड़ी दिल्ली पहुंची, उस समय सवेरे के सात बज रहे थे। मैंने स्टेशन से बाहर आकर फौरन टैक्सी की और सीधा पहाड़गंज चल दिया, जहां शारदा जीजी रहती थीं। मैं चूंकि पहले भी एक बार उनके यहां जा चुका था, इसलिए उनके मकान तक पहुंचने में मुझे कोई दिक्कत नहीं हुई। टैक्सीवाला मेरे कहने से टैक्सी बहुत ही तेज़ चलाता हुआ मुझे वहां तक ले गया।

मैं अपने साथ कोई सामान नहीं लाया था, इसलिए जल्दी से पैसे चुकाकर लपकता हुआ शारदा जीजी के घर पहुंच गया। दरवाज़े पर मुझे एक लेडी डाक्टर बाहर जाती हुई दिखाई दीं। मैंने अन्दाज़ लगाया कि शायद वे बीमार रीता को देखकर बाहर जा रही थीं। लेकिन मुझे यह आशंका हुई कि वास्तव में रीता की हालत बहुत ही ज्यादा खराब होगी, अन्यथा इतने सवेरे लेडी डाक्टर के आने की क्या ज़रूरत थी। मेरा कलेजा यह सोचते ही दहल गया। स्थिर कदमों से मैं घर के अन्दर चला गया। आंगन के बगलवाले कमरे के दरवाज़े पर एक नर्स खड़ी थी।

अब मैं अपने-आपपर काबू न रख सका और झपटकर कमरे में घुसने लगा। नर्स 'सुनिए तो, आप अन्दर नहीं···' कहती हुई

हाथ उठाकर मुझे रोकना चाहती थी, लेकिन मैं उसकी बिना ज़रा भी परवाह किए हुए अन्दर चला गया। कमरे के भीतर मैंने जो दृश्य देखा, उसे देखकर मैं पल-भर के लिए बिलकुल स्तब्ध-सा रह गया।

कमरे में निस्तब्ध सन्नाटा छाया हुआ था। बाहर काफी सवेरा हो जाने पर भी कमरे के अन्दर बिजली का श्वेत प्रकाश फैला हुआ था। सारा कमरा खून से भरा हुआ था। रक्त की नालियां बह रही थीं। एक कोने में एक छोटा-सा पलंग पड़ा हुआ था। उसपर रीता अचेत अवस्था में लेटी हुई थी। पलंग पर एक सफेद चादर बिछी हुई थी और एक ओढ़नी उसे उढ़ाई हुई थी। उसके चेहरे पर एक विचित्र प्रकार की शांति छाई हुई थी। उसकी आंखें बंद थीं और सांस काफी धीरे-धीरे चल रही थी। उसके चेहरे पर एक अनिर्वचनीय सौन्दर्य की फीकी छटा बिखरी हुई थी, जो कलेजे को टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाली थी।

एकाएक मैंने जो कुछ देखा, उसको देखकर मैं सिर से पैर तक कांप उठा। मेरी आंखें पथराने लगीं। यह क्या था? मैंने चौंककर अपने पैरों के पास देखा और उछलकर एक कदम पीछे हट गया। मुंह से एक हल्की-सी चीख निकल गई।

मेरे पैरों के पास ज़मीन पर एक पुराने ऊनी कंबल में लिपटा हुआ मांस का एक लोथड़ा पड़ा हुआ था—एक बालिश्त का। उसका मुंह एकदम लाल और कुछ अजीब-सा था; आंखें नहीं खुली थीं और शरीर के कुछ अवयव भी अभी अपूर्ण थे।

मेरा मुंह सफेद पड़ गया और मैं आंखें फाड़-फाड़कर उस नव-जात मृत शिशु को देखता रहा।

वह मेरे प्रेम का परिणाम था, भयानक परिणाम।

मेरा दिमाग चकराने लगा। मैं दोनों हाथों से अपना सिर पकड़-

कर बैठ गया।

मैं बराबर रीता के पास बैठा रहा। नहाना-धोना, कपड़े बदलना, खाना-पीना और सोना कुछ नहीं। शारदा जीजी ने कई बार कहा कि हाथ मुंह धोकर कम से कम चाय पी लो, लेकिन मैं जैसे कुछ सुन ही नहीं रहा था।

इस बीच रीता को सिर्फ कुछ मिनट के लिए एक बार होश आया था। उसने बड़े कष्ट से अपनी पलकें उठाकर अंतिम बार मुझे आंख भरकर देखना चाहा था। उसका चेहरा धीरे-धीरे फीका और पीला पड़ता जा रहा था। उसे अत्यधिक पीड़ा थी और उसकी पीड़ा देखकर मेरी आंखों से आंसू नहीं रुक रहे थे।

उसके होश में आते ही मैं झपटकर उठा और उसके एकदम निकट आकर रुक गया। उसने बड़ी पीड़ा से अपना दुर्बल सफेद हाथ धीरे-धीरे ऊपर उठाया। उसे मैंने अपने दोनों हाथों में थामकर बहुत संभाले हुए धीरे से पलंग पर फिर रख दिया। फिर मैं स्नेह से उसके बालों को सहलाने लगा।

उसके मुख की कांति दुर्बलता के कारण क्षीण हो चुकी थी। उसने अपनी आंखें मेरे चेहरे पर गड़ाईं और जैसे मुझे पहचानने की कोशिश की। ऐसा मालूम होता था मानो उसको मेरे आने का यकीन न हो।

वह मुझे पहचान गई। उसने अपने फीके मुख को मेरी ओर किया और बड़ी कठिनाई से मुस्कराने की चेष्टा की—मानो मुझे देखकर वह अन्तिम बार अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रही हो।

मैं शर्म और क्षोभ से स्वयं ही पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा था। मेरे ही कारण रीता मृत्यु के मुख में जा रही थी और उसका सर्वनाश हो रहा था।

मैंने रीता की आंखों में बड़े गौर से झांककर यह देखने की चेष्टा की कि मेरे प्रति अब उसके क्या भाव हैं। वह अपने दुर्भाग्य के लिए मुझे कहां तक ज़िम्मेदार समझती है और कहीं मुझसे घृणा तो नहीं करने लगी है।

लेकिन नहीं; मैंने देखा, उसका हृदय उस समय भी प्रेम की भावना से पवित्र था, विश्वास से पूर्ण था।

मैं समझ रहा था कि अब कुछ ही पलों की बात है। इसलिए उससे क्षमा मांगकर अपना सारा पाप धो देना चाहता था। वह प्रतिपल मृत्यु के निकट होती जा रही थी।

"रीता!" मैं उसके कान के पास अपना मुंह ले जाकर धीरे से फुसफुसाया, "रीता!"

मैं उससे क्षमा मांगना चाहता था, लेकिन उसके चेहरे के निष्कपट और स्नेहपूर्ण भाव को देखकर मैंने वैसा कुछ नहीं कहा।

वह मृत्यु की सीढ़ी की ओर अपना कदम उठा चुकी थी। मैं इसीलिए इस समय कोई भी ऐसी बात नहीं करना चाहता था, जिससे उसके मन को क्लेश पहुंचे या उसकी कोमल और विश्वास से भरी हुई भावनाओं को ज़रा भी ठेस लगे।

उसने एक गहरी सांस खींची और निराश भाव से मेरी ओर देखा। शायद वह कुछ कहना चाह रही थी और कह नहीं पा रही थी।

मेरा हृदय उसकी इस मर्मांतक पीड़ा को देखकर कसकने लगा। शायद वह अपनी आंखों के सामने मृत्यु की छाया देखकर सिहर उठी थी और उसकी भयानकता का सामना करने में अपने-आपको असमर्थ पा रही थी।

"रीता···" मैंने भर्राई हुई आवाज़ में उसके कान में कहा, "तुम घबराओ नहीं···अब मैं आ गया हूं···मैं, रीता···अब तुम

बहुत जल्दी अच्छी हो जाओगी···"

मैं कुछ नहीं कहना चाह रहा था । रीता की दयनीय स्थिति मेरी छाती फाड़ रही थी और मेरे मुंह से अचानक ही यह सब कुछ निकला था ।

लेकिन रीता मुझसे अधिक समझदार थी । मेरी बात सुनकर पहली बार उसके चेहरे पर अविश्वास झलका और वह फीकी हंसी हंसने लगी । उसके पीले फीके चेहरे पर भी एक बार हल्की-सी लाली दौड़ गई । उसने अपनी पथराई हुई-सी आंखें मेरे चेहरे पर गड़ा दीं और झूठे विश्वास से मेरी ओर देखने लगी । शायद मेरी बात उसे बिलकुल बहलानेवाली मालूम दी थी ।

लेकिन इस बार उसकी निगाह से निगाह मिलाते ही मैं कांप उठा। वह कैसी दृष्टि थी—एकदम अपरिचित सी !

"रीता, रीता !" मैंने घबराकर कहा, "इधर देखो··· मुझे पह-चानती हो ?···बोलो···इधर देखो···"

अब तक रीता एक शब्द भी न बोली थी । अब उसने बड़े कष्ट के साथ अपना हाथ उठाया, मानो मुझे सांत्वना दे रही हो और धैर्य न खोने को कह रही हो । और फिर वह बड़ी तकलीफ के साथ मुझसे बड़ी धीमी आवाज़ में कहने लगी, "यह मेरा आखिरी वक्त है । आप मेरे लिए अपनी ज़िन्दगी न बरबाद कीजिएगा । आप··· आप···अपनी···"

वह बड़ी पीड़ा से बोल रही थी । मैं उसके इस आखिरी वक्त में बोले गए आखिरी शब्द सुनना चाहता था, परन्तु वह चेष्टा करने पर भी और कुछ न कह सकी ।

"कहो, कहो···रीता···बोलो···!" मैंने उसके मुंह के और भी निकट होकर बहुत ही बेचैनी और अधैर्य के साथ पूछा, "रीता, कहो, तुम क्या कहना चाहती हो ?"

उसका कंठ सूख रहा था। मैंने वहीं पलंग के पास स्टूल पर रखे छोटे शीशे के गिलास में पानी लिया और रीता को अपने दोनों हाथों का सहारा देकर बहुत आहिस्ता से उठाकर अपनी छाती से टिका लिया। फिर धीरे से गिलास उसके मुंह से लगा दिया।

उसने बड़ी कठिनाई से दो घूंट पानी अपने गले से नीचे उतारा। मैंने धीरे से उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और उसके मुंह से आगे के शब्द सुनने के लिए अधीरता से उसकी निस्तेज आंखों की तरफ ताकने लगा।

उसके होंठ फिर हिले और वह कराहती हुई टूटे-फूटे शब्दों में कहने लगी, "...आप...आप...अपनी शादी कर लीजिएगा..."

यह सुनते ही जैसे मेरे ऊपर वज्र गिर पड़ा। अब मुझे एक और संदेह होने लगा।

शारदा जीजी ने मुझे आठ-दस दिन पहले बुलाया था। इस बीच मेरे विवाह की तैयारियां होती रही थीं और मैं स्वयं कोई निर्णय नहीं कर पाया था। मेरे विवाह के कार्ड आदि भी पिछले सप्ताह लोगों को भेजे जा चुके थे। शारदा जीजी को भी अवश्य ही निमंत्रण आया होगा और यहां रीता ने भी उसे अवश्य पढ़ा होगा।

मेरा मन जैसे कचोटने-सा लगा। रीता ने शारदा जीजी के मुझे पत्र लिख देने के बाद व्यग्रता से प्रतीक्षा की होगी। सात-आठ दिन तक उसने लगातार मेरी बाट जोहने के बाद मेरे स्थान पर मेरी शादी की सूचना पाई होगी। उसकी सारी आशाएं धूल में मिल गई होंगी और फिर उसने मेरे रास्ते से हट जाना ही अच्छा समझा होगा। और तब उसने अपने-आपको किसी विपत्ति में भी डालकर अपनी यह हालत बना ली होगी।

मेरा सारा बदन कंपकंपी से थर्राने लगा। अपनी गोद में रखे उसके सिर की ओर मैं विवश-भाव से ताकने लगा। मैं उसकी

कृतज्ञता के भार से दबा हुआ था। वह अब मुझे रीता नहीं, बल्कि उसके रूप में कोई देवी मालूम हो रही थी। उसने कितना बड़ा त्याग किया था, लेकिन इसके साथ ही मुझपर कितना बड़ा अत्याचार भी।

मेरा मन मुझे धिक्कारने लगा। मैं स्वार्थी था, और वह मेरे स्वार्थ के कारण अपनी जान दे रही थी, और मैं था कि अब उसकी लाश के ऊपर अपना घर बसाने जा रहा था। मुझपर और मेरे स्वार्थ पर धिक्कार था, जिसके कारण उसका सर्वनाश हो रहा था।

मेरे मन में एक नया ही विचार इस समय आया और एक नई आशा का उदय हुआ। क्या मैं रीता को किसी भी प्रकार से नहीं बचा सकता? मैं किसी भी मूल्य पर उसकी रक्षा करने को तैयार था। उसके लिए कोई भी कीमत देने को तैयार था।

शारदा जीजी, जो रीता के इस अंतिम समय में उसके साथ ही रहना चाहती थीं, मुझे रीता का सिर अपनी गोद में लेते देखकर कमरे से बाहर चली गई थीं, मुझे एकाएक पागलों की तरह चिल्ला पड़ते सुनकर दौड़ी आईं। शायद वे यह समझकर घबरा गईं कि रीता चल बसी है। मैंने जल्दी-जल्दी उन्हें समझा-बुझाकर वापस भेजा, शहर के किसी अच्छे डाक्टर को फौरन बुला लाने के लिए।

अब रीता असह्य पीड़ा से छटपटा रही थी और फिर से अचेत होती जा रही थी।

मेरी आंखों में एक प्रकार की कठोरता-सी आ गई। मैं मन ही मन अब उसकी मौत से लड़ने का फैसला कर चुका था।

दस बजते-बजते डाक्टर आ गया। रोगिणी की हालत उसे आशाजनक बिलकुल न मालूम दी। फिर भी शारदा जीजी के कहने

से और मेरी व्यग्रता और उत्साह को देखकर और अपनी लंबी फीस के लोभ से वह एक बार प्रयत्न करने को तैयार हो गया।

सबसे पहले रीता की असह्य पीड़ा और छटपटाहट को कम करने के लिए उसे मर्फिया का एक इंजेक्शन दिया गया। उसके बाद तरह-तरह की और सुइयां भी दी जाने लगीं और उनकी प्रतिक्रिया और परिणाम की परीक्षा होने लगी।

मैं अपने-आपमें अपूर्व शक्ति का अनुभव कर रहा था। सफर की थकावट के बावजूद भी मैं डाक्टर के हाथ से पुर्जा छूटते ही दवा या इंजेक्शन लाकर रख देता था।

करीब दो घंटे तक लगातार जीवन और मरण का यह संघर्ष चलता रहा। तरह-तरह के उपचार होते रहे। अंत में, बारह बजे के करीब डाक्टर हताश होकर उठ खड़ा हुआ। उसकी दशा सुधारने की बात तो दूर, वह उसे होश तक में लाने में सफल न हो सका।

मैंने आगे बढ़कर व्यग्रता से पूछा, "कोई आशा है अब भी ?"

उसने मुंह हिलाकर मना कर दिया। मैं सहसा आपे से बाहर हो गया। पागलपन की धुन में आगे बढ़कर मैंने डाक्टर के कोट का कालर पकड़ लिया और अपनी पूरी ताकत से चिल्लाया, "डाक्टर, इसे बचा लो; किसी भी कीमत पर, किसी भी तरह से, चाहे जो करना पड़े, जितना रुपया मांगोगे दूंगा। अगर खून की ज़रूरत हो तो मैं अपने बदन का सारा खून देने को तैयार हूं। अगर मेरी जान दे देने से यह बच जाए, तो मैं इसी वक्त मरने को तैयार हूं, लेकिन इसे बचा लो डाक्टर! मैं इसके बिना नहीं रह सकूंगा, मेरी ज़िंदगी बरबाद हो जाएगी, मैं कहींका नहीं रहूंगा, डाक्टर! इसे बचा लो डाक्टर!"

डाक्टर को मेरा यह प्रलाप हास्यजनक मालूम हुआ। पहले तो वह मेरे इस तरह से पागलों की तरह चिल्लाने पर सहम गया,

लेकिन बाद में उसने एक हल्के झटके के साथ अपना कोट मेरे हाथों से छुड़ा लिया और कमरे के बाहर हो गया।

चलते वक्त वह यह कह गया था कि मरीज की सांस ज़्यादा से ज़्यादा एक-डेढ़ घंटे तक और चलेगी।

अब रीता का माथा भट्ठी की तरह तपने लगा था। मैं हर मिनट पर उसके माथे की पट्टियां बदलता था और उसके सिर पर बर्फ रखता था।

आखिरकार डेढ़ बज गया और उसके शरीर के तापमान में कोई कमी नहीं हुई। मुझे भी स्पष्ट दिखाई देने लगा कि रीता को बचाने के सारे प्रयत्न विफल होते जा रहे हैं। फिर भी, न जाने कौन-सी आशा अब भी मेरे मन के किसी कोने में बची हुई थी। मैं अपना काम यंत्रवत् कर रहा था।

करीब दो बजे रीता ने अंतिम बार अपनी आंखें खोलीं। उसके होंठ फड़फड़ाए और उसके मुंह से कुछ अस्पष्ट स्वर निकले।

ये बिलकुल अन्तिम कुछ पल थे। मैंने अपने हृदय की सारी ईमानदारी के साथ अपनी आंखों में आंसू भरकर कातर स्वर में कहा, "रीता, मुझे माफ कर देना।"

उत्तर में रीता कुछ न बोल सकी। सिर्फ एक बार उसने अपनी उंगली उठाकर संकेत से ऐसी बातें न करने के लिए कहा। मानो इनसे उसे पीड़ा होगी। मैंने उसके निषेधात्मक संकेत को माना। उसकी बुझती आंखों में चिरस्नेह का भाव झलक रहा था।

"रीता, मेरी रीता!" मैं पागलों की तरह रोने-चिल्लाने लगा, "तुम मुझे यों छोड़कर न जाओ।"

लेकिन उसने वह सब शायद न सुना। वह फिर अचेत होने लगी थी।

मैं देख रहा था, उसके शुभ्र भाल पर उसकी काली, घुंघराली लटें बिखर आई थीं, उसकी बोझिल पलकें धीरे-धीरे झुककर बन्द होने लगी थीं, उसके लाल होंठ काले पड़ने लगे थे, उसका गरम तपता हुआ शरीर अब धीरे-धीरे ठंडा होने लगा था, उसका ज्वर से तमतमाता लाल चेहरा सफेद पड़ने लगा था और उसका अत्यंत कोमल शरीर ज्वर से मुरझाकर अब ऐंठने लगा था।

"रीता !" मैं भयभीत होकर अपनी सारी ताकत से चिल्लाया और आशा से मैंने उसकी ओर ताका।

लेकिन वह कुछ न बोली। बल्कि अब मुझे एक और विचित्र अनुभूति हुई। वह मौत, जिसकी उपस्थिति मैं अब तक बराबर महसूस करता रहा था, अब रीता के शरीर पर अपना भयानक साया फैलाने लगी थी। मैं उसका काला आवरण स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष देख रहा था। वह आंख तक न खोल सकी। उसका सिर मेरी गोद से लुढ़कने लगा। अन्त में एक हल्की-सी हिचकी और बस···

दोपहर का गहरा सन्नाटा और कमरे की ऊंची सपाट दीवारें मेरे साथ संवेदना प्रकट कर रही थीं। रीता अपनी सारी पीड़ाएं अपने हृदय में छिपाए हुए किसी अज्ञात दिशा की ओर बढ़ चुकी थी।

सब कुछ समाप्त हो चुका था।

मैं बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रोने और उसके मृत शरीर पर पछाड़ें खाने लगा था।

रीता के पति ने ही आकर स्वयं दाह-कर्म किया था।

रात को आठ बजे के लगभग मैं शारदा जीजी से मौन-भाव से विदा लेकर वापस स्टेशन की ओर जा रहा था। शारदा जीजी मेरी व्यथा अच्छी तरह समझती थीं। उन्हें इस बात का सन्तोष था कि

उन्होंने मुझे और रीता दोनों ही को ठीक समझा था और मैंने वहां आकर उनकी आशा के अनुकूल कार्य ही किया था। परन्तु वह मेरी विक्षिप्तों जैसी दशा देखकर मुझे एक दिन के लिए रोकना चाहती थीं और इसके लिए उन्होंने मुझे तरह-तरह की कसमें भी दिलाई थीं। लेकिन मेरी हालत उस समय कुछ ऐसी हो रही थी कि मैं किसी भी प्रकार से न रुक सका। यहां तक कि उनके बहुत मिन्नतें करने पर भी मैंने वहां पानी तक न पिया।

सीढ़ी पर से पांव फिसल जाने के कारण रीता की वैसी भयानक दशा हुई थी, यह उन्होंने मेरे सन्तोष के लिए मुझे बताया था।

चलते समय उन्होंने मुझे एक छोटी-सी जिल्ददार कापी दी थी और कहा था कि यह रीता ने मरने के दो दिन पहले उनके पास रखवाई थी।

वे बोलीं, "अब इसे तुम्हीं अपने पास रख लेना। मैं इसका क्या करूंगी?"

मैंने अपना मुर्दा हाथ बढ़ाकर उसे ले लिया था और चुपचाप हाथ जोड़कर चल पड़ा था।

नौ

रात्रि की गहन निस्तब्धता को चीरती हुई ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से भागी चली जा रही थी। एक छोटे कम्पार्टमेंट के एक कोने में मैं उदास, खोया-खोया-सा बैठा था। मेरे हृदय में नैराश्य के बादल उमड़ रहे थे। मैं चुपचाप अपने विचारों में लीन, खिड़की पर अपना सिर टिकाए बैठा था और कभी-कभी इधर-उधर या खिड़की के बाहर भी देख लेता था।

आज, शायद जीवन में पहली बार, मेरे मन में संसार से विमुख हो जाने की इच्छा हो रही थी। मैं सोच रहा था कि क्या यह संभव नहीं है कि समाज में रहते हुए भी अपने अस्तित्व को उसमें लीन न होने दिया जाए? क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि समाज से अपने सभी सम्बन्ध तोड़ दिए जाएं और एकाकी जावन बिताना सम्भव हो सके?

नहीं। मैंने सोचा, ऐसा शायद कभी सम्भव नहीं है। समाज का एक अनिवार्य नियम है, उसका एक चिरंतन आकर्षण है, वह एक स्थायी बंधन है। उससे कोई तब तक मुक्ति नहीं पा सकता जब तक वह जीवित है और समाज में रहता है। समाज में रहना हो तो समाज का बनना ही पड़ेगा।

हमारे अनेक सामाजिक सम्बन्ध हैं, जो हमें और साथ ही समाज

के प्रत्येक व्यक्ति को एक प्रकार के अंतर्सम्बन्ध से जोड़े हुए हैं, जिससे छुटकारा नहीं पाया जा सकता। दूसरों के सुख-दुःख से हमें प्रभावित होना ही पड़ेगा और अपने सुख-दुःख में हमें दूसरों के सम्मिलन और संवेदना-सहानुभूति की अपेक्षा रहेगी ही।

समाज के बहुत-से ताने-बाने, बहुत-से जाल हमारे चारों ओर फैले हुए हैं। वे हमें मर्यादा, नैतिकता तथा अन्य सामाजिक मूल्यों के अनुसार चलने को विवश करते हैं। वे नियम समाज ने बनाए हैं हमारे लिए। हमने बनाए हैं समाज के लिए। उनकी छूट किसीके लिए भी नहीं हो सकती।

...मर्यादा के झूठे सिद्धांत, नैतिकता की अप्राकृतिक और अमानवीय भावनाएं और समाज के स्वार्थी लोगों द्वारा निर्मित निर्धारित विभिन्न मानव-मूल्य...

...रीता की मृत्यु...प्रेम, विवाह, पातिव्रत्य, सतीत्व, व्यभिचार और अनाचार...समाज की मर्यादा...

मुझे बहुत तीव्र पीड़ा हुई। मैं कल शाम से एक पल के लिए भी विश्वास नहीं कर पाया था। कल रात गाड़ी पर भी नहीं सो पाया था, यद्यपि एकाध बार मैंने सोने की चेष्टा अवश्य ही की थी। हालांकि आज दिन-भर मैंने किसी प्रकार की थकान या कमज़ोरी नहीं महसूस की, लेकिन रीता के दाह-संस्कार के बाद घर आते ही जैसे मैं एक प्रकार की पूर्ण निर्जीवता का अनुभव करने लगा। रीता का सूना कमरा और खाली पलंग तो जैसे मुझे काट खाने को दौड़ रहा था।

मैं कल शाम से भूखा भी था। आज दिन-भर तो एक बूंद पानी का घूंट भी मेरे गले से नीचे नहीं उतरा था। इस वक्त भूख बुरी तरह से सता रही थी। पेट में ऐंठन-सी हो रही थी।

मेरा अंग-अंग टूटने लगा। लंबी थकावट और अनिद्रा के कारण

मेरी आंखों में बुरी तरह की कड़वी जलन मचने लगी। मैंने आंख बंद करके सोने की कोशिश की, तो उनमें से पानी कड़वाहट से भरा हुआ निचुड़कर बहने लगा। काफी देर तक फिर मैं रूमाल से आंखें पोंछता उसी तरह से बैठा रहा।

रेलगाड़ी चलती नहीं, अब उड़ती-सी लगती थी। बाहर आसमान का कालापन अब कुछ लाली-सी लेने लगा था। दूर, बहुत दूर पर क्षितिज के कुछ ऊपर चांद लटका हुआ था। निहायत बेढंगी शक्ल में। उसका रंग इस वक्त ठीक अंडे की ज़र्दी की तरह मालूम हो रहा था, जो एक बेआकार में बिखर जाए। पेड़ों के समूह किसी वन-सृष्टि के अस्तित्व की ओर संकेत करने लगते थे। चांदनी धीरे-धीरे ज़मीन की तरफ आ रही थी, हवा की लहरों से थपेड़े खाती हुई। ऐसा मालूम होता था जैसे अभी कुछ ही देर बाद इस सारी ज़मीन पर यह सारी चांदनी बिछ जाएगी और यहां पर नृत्य होगा, चांद का और तारों का, और ऊंचे, घने वृक्षों के रूप में खड़े हुए ये दर्शक करतल-ध्वनि के साथ हर्ष प्रकट करेंगे। फिर शायद इनके थकान से चूर हो जाने पर चारों ओर निद्रा से शांति छा जाएगी और ये सब सो जाएंगे—चांद, सितारे, पेड़, पत्ते, हवा, चट्टानें, पृथ्वी और आकाश···

चेतन ही नहीं, जड़सृष्टि भी रीता की मृत्यु जैसी घटना से बिलकुल अप्रभावित है···

परन्तु गाड़ी की तेज़ रफ्तार सब कुछ पीछे छोड़ती जा रही है। हर चीज़ को—अलावा तार के उन खंभों के जो ऊंचे-नीचे होते हुए अभी तक साथ हैं; और अभी ही नहीं, बल्कि सारी यात्रा-भर साथ रहेंगे, ये सन्तोष के लिए लगते हैं कि अगर सब कुछ पीछे छूट गया है, तब भी हर कुछ पीछे नहीं छूटा है और अभी बहुत कुछ ऐसा है, जो साथ है और बहुत कुछ ऐसा भी है, जो आगे साथ रहेगा।

सचमुच क्या इससे धीरज मिलता है, अभाव की पीड़ा कम होती है, छूटने की व्यग्रता दूर होती है और एक तरह की आस्था जागती है भविष्य के प्रति, क्योंकि वहां पर वह सूनापन नहीं होगा, जिसकी आशंका व्यथा के दुर्बल पलों में कंपाती है, क्योंकि वहां पर कुछ ऐसा भी होगा, जिसके साथ रहने की भावना सन्तोष देगी और जिसके साथ जिया जा सकेगा, क्योंकि उसके बिना जीया नहीं जा सकता···

मुझे रात के घनघोर अन्धेरे में अपनी आंखों के सामने रीता का चेहरा दिखाई देने लगा। मरती हुई रीता का पीला, कांतिहीन मुख।

मैं चौंक पड़ा और सीधा होकर बैठ गया। मेरा ध्यान अपने और रीता के सम्बन्धों की ओर गया। हम लोगों के बीच वैसे सम्बन्ध के लिए कौन ज़िम्मेदार था ? मैं, रीता या वह समाज जिसमें हम लोग रहते थे ?

नहीं, मैं उलझन में पड़ गया और मन ही मन बड़बड़ाने लगा।

सारे नैतिक मूल्य, समस्त रीति-विधियां, सारे निषेध और सभी सामाजिक मर्यादाएं मिलकर जैसे समाज की इकाइयों, व्यक्तियों का उत्पीड़न करने के लिए ही बनाई गई हैं, उसकी होड़ में लगी हैं···

मेरा सिर जैसे भारी होने लगा और मेरा मन विद्रोह की भावना से भर गया।

लेकिन मेरी विचारधारा यहां से टूटकर फिर वहीं जा लगी, जहां से रुकी थी। संसार की असारता फिर मन को विरक्त करने लगी।

गाड़ी की खट्-खट्-खट् खटाखट् की आवाज़ ने फिर मेरा ध्यान तोड़ा।

यह गाड़ी ? हां, यह गाड़ी दिल्ली से इलाहाबाद जा रही है, कल शाम यह इलाहाबाद से दिल्ली के लिए रवाना हुई थी और आज दिल्ली से इलाहाबाद के लिए रवाना हुई है। यह रोज़ इलाहाबाद से दिल्ली और दिल्ली से इलाहाबाद जाती है···वाह, यह क्या बात

हुई ?···नहीं···यही बात है···

हिश् ! क्या बेकार की बात है···

मुझे सहसा एक और बात का ध्यान आया । आज मैं बिना किसी सूचना या अरज़ी के दफ्तर से गायब रहा था—दिन-भर के लिए। मैं सोच रहा था कि मुझे अरज़ी देकर ही आना चाहिए था, चाहे जैसी भी परिस्थिति क्यों न रही हो ।

उंह, मुझे नौकरी से एक प्रकार की विरक्ति-सी मालूम हुई। गुलामी ! ···

बाहर कोई स्टेशन अब तक आ चुका था । स्टेशन पर जलती हुई सफेद, पीली बिजली की बत्तियों की रोशनी ट्रेन में छंटकर आ रही थी । कोलाहल बढ़ता जा रहा था और सोने या ऊंघनेवाले लोग जाग पड़े थे ।

मैंने अपने आसपास बैठे सहयात्रियों पर एक निगाह डाली। मेरे सामनेवाली बर्थ पर एक कोने में एक मुलायम-सी बिछी हुई गद्दी पर दो वर्ष का एक शिशु सो रहा था । उसीसे सटी हुई एक युवती भी सो रही थी, जो शायद उसकी मां रही होगी । उसका पति बैठा हुआ था और अपने घुटनों पर सिर रखे था । रह-रहकर वह नींद ले लिया करता था ।

मैं रीता का चित्र अपनी कल्पना में खींचने लगा, जो अपने शिशु और मेरे साथ वैसी ही लगती···

उन लोगों की बगल में बर्थ के शेष भाग को घेरे हुए एक मोटे से सज्जन सपत्नीक विराजमान थे ।

दूसरी बर्थ पर एक गृहस्थ सज्जन अपने तीन बच्चों और पत्नी के साथ सफर कर रहे थे । उनके परिवार के सभी लोग सो रहे थे, केवल सबसे छोटा बच्चा, जिसकी आयु डेढ़-दो वर्ष की रही होगी, जाग रहा था और कौतूहलवश बाहर प्लेटफार्म पर झांक रहा था ।

उसकी मां, जो खिड़की पर सिर रखे सो रही थी, निद्रावस्था में ही उस शिशु की एक टांग को नीचे से पकड़े हुए थी, इस भय से कि कहीं वह उछलकर बाहर न हो रहे।

ऐसा लगता था जैसे उस बच्चे के लिए बाहर की सब चीज़ें नई थीं। वह सब कुछ देख-देखकर बहुत प्रसन्न हो रहा था और किलक-किलककर उछल रहा था। वह चाह रहा था कि उसकी मां भी उसकी इस खुशी में शरीक हो, लेकिन उसको वैसा न करते देख और बराबर सोते देखकर वह खिड़की पर रखा हुआ उसका सिर थपथपा देता और उसके मुंह पर ढका हुआ उसका घूंघट हटाकर बड़े अस्पष्ट स्वर में उससे अपनी बात कहने का प्रयत्न कर रहा था।

···वह शिशु मुझे बड़ा प्यारा मालूम हुआ।

मेरे बगल में पांच-सात युवक कतार बनाए बैठे थे और सभी एक-दूसरे के कंधों पर अपनी-अपनी खोपड़ियां रखे ऊंघ या गहरी नींद में सो रहे थे। वे सभी विद्यार्थी मालूम होते थे और शायद कहीं से कोई मैच खेलकर वापस आ रहे थे। सोने के पहले वे काफी देर तक अपनी टीम के हार जाने के कारणों पर अपने-अपने ढंग से प्रकाश डालते रहे और विवाद करते रहे थे।

उन्हें देखकर मुझको कुछ दिनों पहले का अपना विद्यार्थी-जीवन याद आने लगा था।

मेरे कुछ सहयात्री नींद की खुमारी में ही नीचे स्टेशन पर उतर गए थे और पान, बीड़ी, सिगरेट या चाय लेकर पी रहे थे।

···मां-शिशु, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, युवा और प्रौढ़ावस्था, विद्यार्थी और गृहस्थ-जीवन, नौकरी और व्यवसाय, जीवन और मरण···

ट्रेन थोड़ी देर बाद फिर स्टेशन छोड़कर रफ्तार में आने लगी थी।

मेरी आंखों पर फिर विषाद का परदा पड़ गया था और मैं फिर किन्हीं विचारों में खो गया था···

दस

इलाहाबाद आकर मैं सीधा घर पहुंचा और मां-बाप के प्रश्नों की झड़ी लगा देने पर भी किसीको कोई उत्तर न दे फौरन अपने कमरे में जाकर सो गया। ग्यारह बजे के करीब मैं उठकर नहाया-धोया और खाना खाया। फिर निरुत्साहित-सा दफ्तर गया। वहां दिन-भर आंखों में जैसे आग-सी जलती रही; कोई काम न हो सका। शाम को घर वापस आकर मैंने खाना नहीं खाया, सिर्फ चाय पीकर सो गया और फिर दूसरे दिन सवेरे तक लगातार सोता रहा।

उस समय जब मैं जागा तो मेरी तबियत काफी हल्की थी। इतवार का दिन था और दफ्तर भी नहीं जाना था। यह सोचकर मुझे काफी निश्चिन्ति मालूम हुई और मेरी रही-सही थकान भी उतर गई।

रीता की जो डायरी मुझे शारदा जीजी ने दी थी, वह मैंने निकाली और पढ़ने लगा। उसमें लिखा था :

आज हम सब लोग इलाहाबाद आ गए। पिताजी कहते हैं कि अब यहां से तब तक वापस न जाएंगे, जब तक मेरा विवाह न हो जाएगा। हुं:, यह भी कोई बात हुई? लेकिन वे तो इसीपर अड़े हैं।

दो दिनों तक तो यहां मेरा मन बिलकुल ही नहीं लगा। मैं बड़ी परेशान-सी रही। बाप रे, कैसे रहूंगी यहां ? लेकिन अब धीरे-धीरे तबियत कुछ लगने लगी है। इलाहाबाद वैसे भी है अच्छा शहर।

आज हम लोग मौसाजी के यहां कुछ दिन रहने के बाद वापस आ गए। वे सिविल लाइंस से भी आगे रहते हैं—यहां से काफी दूर।

मैंने तो मौसाजी को पहली बार देखा। बिलकुल बैल की सी शकल के थे। मुझे तो उनका चेहरा देखते ही बड़े ज़ोर की हंसी छूटने लगी थी। बड़ी मुश्किल से रोक पाई। कहते थे—आ री रीता, आ। अब तो तू मेरे ही घर में रह जा। तेरा ब्याह भी इसी घर से कर दूंगा। दिल्ली में करेगी न ? पसंद है ? बहुत बड़ा शहर है, हां। रीता बेटी खूब घूमेगी···आ न ?···हिश्, शरमाती है ?

और यह कहते हुए वे हाथ फैलाकर मुझे गोद में उठा लेने को तैयार हो गए। वाह रे, मैं तो शर्म से पानी-पानी हो गई और आंचल से मुंह छिपाकर अंदर मां के पास भाग गई।

लेकिन मौसा हैं मज़ेदार आदमी।

आज हम लोगों ने त्रिवेणी में स्नान किया। बाप रे, कितना ठंडा पानी था। मेरा तो जैसे खून ही जमने लगा था। फिर भी मैं नहाई खूब जी भरके। खूब गोते लगाए।

लेकिन यह मुन्नू भी कितना शैतान है। मेरी साड़ी का पल्ला पकड़कर मुझे गहरे पानी में खींचे लिए जाता था। कहता था, इतनी बड़ी होकर वहां किनारे पर क्या नहाती हो। यहां आओ गहरे में तो मालूम पड़े नहाने का मज़ा क्या होता है।

और ये स्कूली लड़कियां कितनी बेशर्म होती हैं। कैसी-कैसी नोकदार चोलियां पहने, भीगी साड़ी उछालती हुई इधर से उधर दौड़ लगा रही थीं। हाय रे!

यह मुन्नू भी कितना शैतान होता जा रहा है। अरे, वह सामने कोई रहते हैं उसके रमेश चाचा। उन्हींसे न जाने हर समय क्या झूठी-सच्ची लगाता रहता है। मैं उसे यह देती हूं, मैं उसे वह देती हूं, मैं उससे यह कहती हूं, मैं उससे वह कहती हूं, मैं उससे यह पूछती हूं, मैं उससे वह पूछती हूं। हुं:, ये भी भला किसी गैर से इस तरह से कहने की बातें हैं!

लेकिन एक बात है। उसके रमेश चाचा हैं अच्छे आदमी। सुनते हैं, यहीं यूनिवर्सिटी में पढ़ते हैं, एम० एस-सी० में।

यह भला एम० एस-सी० में क्या पढ़ाया जाता होगा। सुना है, बारहवें दरजे के भी और काफी आगे यह दरजा होता है। तो कम से कम बारहवां दरजा तो पास ही हैं मुन्नू के ये रमेश चाचा।

लेकिन कुछ भी हो, नाम मज़े का है—रमेश चाचा। वाह, भला बताओ यह भी कोई नाम हुआ, जो ऐसे पुकारा जाए। अरे मुन्नू को पुकारना चाहिए रमेश भाई साहब, या रमेश भय्या पुकारे या और भी चाहे जो कुछ पुकारे जो उसका मन हो। रमेश चाचा तो सुनने में ऐसा मालूम होता है जैसे किसी बड़े बुज़ुर्ग आदमी का नाम है, चाचाजी। लेकिन अगर कोई चाचाजी को देखे, तो एक लड़का, टइयां-भरा। अरे मुझसे ज़्यादा से ज़्यादा एक या दो साल बड़े होंगे, और क्या?

ये मुन्नू के रमेश चाचा तो बड़े गुरु निकले। पहले तो मैं लाख

छत पर खड़ी ताकती रहूं, पर एक बार भी भूलकर इधर निगाह नहीं करते थे। सीधे-सादे अच्छे लड़कों की तरह इधर से उधर निकल जाते थे और उधर से इधर। लेकिन इनका असली रंग तो अब निकलता जान पड़ रहा है।

लीजिए जनाब, मालूम हैं इनकी हरकतें। आज सवेरे चाचाजी मुझे पान देने लगे। फिर शाम को उधर बुलाकर हज़रत ने मुझे एक संतरा पकड़ा दिया। वाह रे, जैसे मैं कोई पांच बरस की बच्ची हूं। और कोई वक्त होता तो मैं हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाती। लेकिन उस वक्त न जाने क्या सोचकर मैं चुप रही।

फिर बहलाकर चाचाजी पूछते हैं, "तुम्हारा नाम क्या है ?…"

तो यह बात है ? अब मैं समझी। लेकिन खैर, मैंने चुपचाप से अपना नाम भी बता दिया।

और जब मैंने उनका नाम पूछा, तो चाचाजी मुंह फेरकर चल दिए। कैसे चालाक हैं !

नाम, पता, सब जानते हैं। लेकिन ऊपर से ऐसे बनते हैं, जैसे बड़े भोले हों। वाह रे !

आजकल न जाने मेरा मन कैसे-कैसे करने लगा है। हां, एक बात है—मुन्नू के चाचा हैं बड़े पक्के जादूगर। जाने क्या जादू कर दिया है मुझपर ; हर वक्त खड़ी-खड़ी उनके कमरे की तरफ ताकती रहती हूं। जब वे घर में नहीं रहते हैं, तो उनके आने की बाट जोहती रहती हूं…

इन रमेश चाचा में एक बात बहुत बुरी है। जब भी दीवार के पास बुलाएंगे, तो जाते ही हाथ पकड़ लेंगे। यह क्या बात है ? अरे, अगर उन्हें बातचीत करनी है तो उस तरफ वे खड़े रहें

और इस तरफ मैं। फिर करें बातचीत जितनी चाहें। लेकिन वे मानें तब न ?

कभी-कभी तो वे ऐसी बातें करने लग जाते हैं कि मेरा कलेजा धक्-धक् करने लगता है।

पूछते हैं, "मुझसे प्रेम करती हो ?"

वाह रे, तो अब उनकी हिम्मत यहां तक बढ़ गई है।···और यहां तक नहीं, आज बोले, "एक चिट्ठी लिखकर दे दो।"

लो भला बताओ, चिट्ठी लिखकर क्या दूं! अरे चिट्ठी लिखी जाती है तब अगर कोई परदेस में हो—कि अपने शहर में—पड़ोस में। और वह भी जबकि रोज़ ही भेंट होती हो, बातचीत होती हो।

लेकिन बातचीत तो बहाना है। असल में ऐसा मालूम होता है कि सिर्फ हाथ पकड़ने को ही बुलाते हैं।

पर एक बात ज़रूर है। बातें खूब मज़े की करते हैं। मुझे तो हंसी छूटती है, भला ये बच्चों की सी बातें मुझसे क्या करना। अरे, मुझसे तो कुछ और ही मेल की बातें करनी चाहिए, जिनमें कुछ···धत्, यह मैं क्या लिखने लगी।

अब तो न जाने क्या हो गया है कि उन्हें देखे बिना एक पल के लिए भी चैन नहीं पड़ता।

और हां, सुना है, कल अपने किसी दोस्त के ब्याह में लखनऊ जा रहे हैं।

अरे हज़रत, पहले अपना ब्याह तो कर लो। फिर दोस्तों के ब्याह में जाते रहना।

अगर इन बच्चू का ब्याह मुझसे हो जाए तो ऐसा बांधकर

रखूं कि सब दोस्तों-वोस्तों का चक्कर भूल जाएं। लेकिन मुझसे…
हिश, मुझे तो शरम लगती है।

…और आज तो सचमुच चाचाजी बोरिया-बिस्तर बांधकर बारात में जाने के लिए तैयार हो गए। मैंने जब उनकी एक फोटो मांगी, तो दे तो दी, लेकिन मुस्कराने के बाद।

छि:, मैं तो लाज से मर गई।

ये न जाने क्या होता जा रहा है। हम लोगों में शायद पिछले जन्म का कोई रिश्ता है, या ज़रूर कोई और बात है। लेकिन इतना मोह बढ़ाना क्या ठीक होगा ?

दो-तीन दिन के लिए ही वे बाहर गए तो मेरी तबियत यहां कैसी-कैसी लगने लगी।

लेकिन मैं अब क्या करूं ? मैं तो अब कहींकी नहीं रही, लगती हूं। फिर जो कदम आगे बढ़ाते को उठा चुकी हूं, उसे पीछे कैसे रखूं ?

ये आज न जाने मुझसे कैसा अपराध हो गया ! वे तो बेचारे पढ़ने जा ही रहे थे। मैंने ही उन्हें अकेले में बुलाया। लेकिन मैं यह तो नहीं चाहती थी…नहीं, नहीं…सारी भूल मेरी ही है…

और अगर मैं चाहती तो क्या उन्हें रोक नहीं सकती थी। लेकिन उस वक्त न जाने क्या हो गया था। जैसे मैं आसमान में उड़ी जा रही होउं…उनकी बांहों की कसावट ने मुझे बेहोश कर दिया था…

अब तो मेरा मन यह हो रहा है कि कहीं से जहर मिल जाए तो खाकर सो रहूं या छत पर से फांद पड़ूं। कभी यह मन हाता है कि गंगाजी जाऊं और डूबकर मर जाऊं…

हे भगवान, यह मुझसे कैसा अपराध हो गया है ! हे परमात्मा,

अगर कहीं कुछ हो जाएगा, तो मैं किसीको मुंह दिखाने लायक भी न रहूंगी। पिताजी को अगर मालूम हो गया तो वे मुझे जान से ही मार डालेंगे।

इतना बड़ा पाप···हे भगवान, मेरे ऊपर कृपा करना···मुझे माफ करना···

मुझे दो दिनों से नींद नहीं आ रही है। मेरी आंखें लाल पड़ गई हैं। हर वक्त यही दिल करता है कि किसी भी तरह से हो, अपनी जान दे दूं और खानदान की इज़्ज़त को मिट्टी में मिलने से बचा लूं।

आज तो मैंने मां से गंगाजी चलने को भी कहा था, लेकिन उन्होंने टाल दिया। अगर वे चलतीं, तो मैं आज अपने इस पापी शरीर का अन्त कर देती, ज़रूर ही डूबकर मर जाती।

हे प्रभु! जिस बात से मैं डर रही थी, वही हुई। दो दिन से न जाने कैसी तबियत हो रही है। हर वक्त सिर चकराता रहता है, पेट में दर्द रहता है, जी मिचलाता रहता है और हमेशा उबकाई-सी आती रहती है···

···न जाने क्या होनेवाला है? मेरा खाना-पीना बिलकुल छूट जाने से अब मां को भी कुछ शक होने लगा है···आज तो पूछ भी रही थीं कि इस बार क्या बात है?···कैसी तबियत है?···

मैं क्या बताऊं, कैसे मर जाऊं···

मां को सब कुछ मालूम हो गया है। उन्होंने पिताजी से भी बता दिया है। हे परमेश्वर, आज जब मैं उनके सामने पड़ी तो कैसे

गुस्से से देख रहे थे मेरी तरफ पिताजी···

हे धरती माता, तू फट जा और मैं उसमें समा जाऊं···

मैंने जो पाप किया है वह इतना बड़ा पाप है कि उससे बढ़कर और कोई पाप नहीं हो सकता। जो-जो लड़की यह पाप करती है उसके लिए इसकी सबसे अच्छी सज़ा मौत ही है, वरना फिर ज़िंदगी-भर इस पाप की गठरी को ढोना पड़ता है···और···नहीं भगवान, इतनी बड़ी सज़ा मत दो, यह मुझसे अनजाने में ही हो गया है, ओ··· अगर मैं पहले जानती···

हाय, यह पाप अकेले मुझे ही नहीं भुगतना है, वे भी आजकल इसीकी चिन्ता में घुले जा रहे हैं, बताशे की तरह। इतने ही समय में उनकी शकल ऐसी हो गई है, जैसे महीनों से बीमार हों ; शकल ही पहचान में नहीं आती है। लगातार मेरी तरफ ताकते रहते हैं, मेरा रास्ता देखते हैं, मुझे बुलाते हैं, लेकिन मैं अब क्या करूं। मैं उन्हें क्या बताऊं कि मुझे क्या हो गया है। लेकिन इसमें उनका कोई दोष नहीं है, सारी भूल मुझ अभागिन की ही है, और मैं ही उसका दंड भुगतने को तैयार हूं। वे क्यों परेशान हों।

आज वे बहुत परेशान थे। चिट्ठी में लिखकर पूछते थे, "बताओ क्या बात है, नहीं तो मैं प्राण दे दूंगा।"

मैं उन्हें क्या बताऊं ? कैसे बताऊं ?

पिताजी ने मेरी शादी तय कर दी है। सिर्फ आठ दिन बाद ही मुहूरत है। मेरा कलेजा न जाने क्यों इस शादी के खयाल से ही कांपने लगता है। मुझे ऐसा लगता है जैसे कोई बड़ा तूफान आएगा,

जैसे कोई बड़ी अनहोनी और अप्रत्याशित रूप दारुण घटना घटित होगी, जैसे मैं भी पापिष्ठा लड़कियों की भांति ठुकराई जाऊंगी, अपमानित होऊंगी, तिरस्कृत होऊंगी और मरूंगी, तिल-तिल करके, कटकर, रोकर···

मेरा ब्याह क्या हुआ, जैसे मैं बिलकुल नरक में ही आ गई हूं। सास का व्यवहार तो बहुत ही ज़्यादा खराब है। पतिदेव भी सास के कहने में ही ज़्यादातर रहते हैं···मेरे कहने में नहीं।

लेकिन फिर भी खैर है, भगवान मेरी नाव इसी तरह से ही पार लगा दे···ऐसे ही मेरी ज़िन्दगी काट दे···

मेरी ज़िंदगी के वे दिन अब निकट आते दिखाई देते हैं, जब मैं अपने किए का फल भोगूंगी, जब मेरे पापों का परिणाम अपनी सारी भयानकता के साथ मेरे सामने आ खड़ा होगा और अपनी विकरालता से मुझे डसेगा···

मेरे पति मुझे पतित और भ्रष्ट समझने लगे हैं। उनका संदेह धीरे-धीरे विश्वास में बदलता जा रहा है। वे अब मुझे गाली देते हैं और कभी-कभी तो निर्दयता के साथ पीटते भी हैं।

मैं पापिष्ठा इसी लायक हूं।

आजकल मुझे रमेश चाचा की याद उन पलों में आती है जब अकेली सूनी रातों को मैं सब ओर से निराश और ठुकराई हुई अनुभव करती हूं। उन बेचारों की ज़िंदगी भी मुझ अभागिनी की वजह से खराब हुई। उन्होंने तो मुझे कितने हौसले के साथ अपने मीठे सपनों के लिए स्वीकारा था और मैं थी कि मैंने अपना तो सर्वनाश किया ही, साथ ही उनकी भी ज़िंदगी बरबाद कर दी, और उन्हें

कहींका न रखा···वे, जो अभी ज़िन्दगी के कड़वे तजुर्बों से बिलकुल ही अछूते हैं, जो अभी बच्चों की तरह पढ़ रहे हैं, और वे, जो अब भी मेरे लिए सब कुछ करने को तैयार होंगे, लेकिन···अब कुछ नहीं हो सकता।

जाने मुझे इस घर में कैसा लगता है। ऐसा मालूम होता है जैसे इस घर में सभी मेरे दुश्मन हैं, कोई अपना नहीं, किसीको मुझसे कोई सहानुभूति नहीं, कोई लगाव नहीं, कुछ लेना-देना नहीं, मेरे जीने-मरने से कोई मतलब नहीं, जैसे मैं इस घर में महरी से ज़्यादा औकात न रखती होऊं···

मैं आजकल ज़्यादातर रोती ही रहती हूं। रात में अकेली पड़ी-पड़ी जागती हूं। शरीर में हर वक्त तेज़ जलन-सी होती रहती है। कोई मेरे दिल की सुननेवाला, कोई मेरे दुःख को बंटानेवाला नहीं है। कोई ऐसा नहीं है, जिससे मैं अपना दुखड़ा कह सकूं, अपना दिल हल्का कर सकूं···

यहां शारदा बहिन बहुत अच्छी हैं। मुझे बिलकुल सगी बहिन की तरह मानती हैं। बातें क्या करती हैं, जैसे मन मोह लेती हैं। जी चाहता है कि उन्हींके पास बराबर बैठी रहूं।

यहां अगर किसी पर विश्वास करके अपने मन को किसीके सामने खोला जा सकता है, तो वे सिर्फ शारदा जीजी ही हो सकती हैं, वही हैं···बस···

अब तो मेरी तबियत बहुत खराब होती जा रही है। हर वक्त पेट में दर्द हुआ करता है। लगता है जैसे पेट फट जाएगा। पेट के अन्दर कुछ धीरे-धीरे रेंगता-सा मालूम होता है···दिन भी तो होने

आ रहे हैं···

लेकिन ऊपर से यह मार, गालियां, लताड़ और यह नारकीय यातना···

मैं सोचती हूं कि शारदा जीजी से अपने कलंक की यह कहानी बता दूं। क्योंकि मैं अकेले अब यह सब बर्दाश्त नहीं कर सकती। मुझे किसीकी मदद की ज़रूरत है। मुझे किसी ऐसे के सहारे की ज़रूरत मालूम होती है, जो दो मिनट बैठकर मेरा दुःख बांट ले, जो सहानुभूति की दो बातें बोल दे, जो मुझे मेरे कलंकित जीवन के लिए धिक्कारे नहीं, जो मुझे अपना समझकर मेरे साथ सगी बेटी या सगी बहिन की तरह बात करे, जो मेरे लिए कुछ करे, मुझे इस नरक से निकाले, और जिससे मैं सब कुछ कहकर शांति से मर सकूं···

आज शारदा जीजी को मैंने अपने कलंकित जीवन के बारे में सब कुछ बता दिया। मैं नहीं जानती कि मैंने ठीक किया या गलत। लेकिन मैं यह ज़रूर जानती हूं कि मैंने उसीसे सब कुछ कहा, जिससे मुझको कहना चाहिए था। मुझे यह भय है कि कहीं वे भी मुझे पतिता न समझने लगें और केवल इसी कारण से घृणा न करने लगें, लेकिन जहां तक मैंने उनको समझा है, वे ऐसा नहीं करेंगी, वे ऐसी नहीं हो सकतीं। और मैं सचमुच में उनकी कृतज्ञ हूं···क्योंकि जो वे मेरे साथ कर रही हैं, वैसा सगे भी नहीं करते, सगों ने नहीं किया।

हे भगवान, अब तो मेरी लाज तुम्हारे ही हाथ में है। यहां वाले मुझे घर रखने को तैयार नहीं हैं और शारदा बहिन मुझे अपने घर ले जाने को कहती हैं···यह ठीक है कि शारदा जीजी मुझे बहुत

अधिक चाहती हैं, लेकिन इसके साथ ही मुझे तो यही सोचना है कि अब तो भला-बुरा जैसा भी है, यही मेरा घर है। पति चाहे जैसे हों, मेरा स्थान तो अब उन्हींके चरणों में है। उनका व्यवहार चाहे जैसा हो, अब तो मेरा धर्म उन्हींकी सेवा करना है।

आखिर शारदा जीजी मानी नहीं और मुझे अपने घर लाकर ही रहीं। और वे मान भी कैसे सकती थीं? आखिर इतना अत्याचार कौन देख सकता है? अगर मैं उसे सहन करने को तैयार भी थी, तब भी वे मुझे ऐसा नहीं करने दे सकती थीं, क्योंकि मेरी उस ज़िन्दगी से तो मौत ही हज़ार गुना अच्छी थी···

लेकिन यहां आकर मेरी ज़िन्दगी ऐसे तो कट नहीं जाएगी। पचास तरह की मुसीबतें हो सकती हैं। मेरा तो अब जी बहुत घबराता है। देखें, भगवान अब आगे क्या दिखाते हैं?

अब तो बस···ओ रमेश···ओ···

कल से मेरा मन खुशी से नाच रहा है। मैंने शारदा जीजी को अपने बारे में कोई भी समाचार इलाहाबाद भेजने की मनाही कर दी थी, पर वे मानी नहीं। और···अब सुना है कि वे यहां जल्दी ही आ रहे हैं···

मेरा मन काफी हलका है···शायद मैं यही चाह रही थी···और भगवान ने मेरी सुन ली है···मेरी भूल को क्षमा कर दिया है और मुझे नरक में सड़ने से बचा लिया है···

···लेकिन मैं अब किस लायक रही? छि:, वे मुझे इस हालत में देखेंगे तो क्या कहेंगे? पर अगर अब भी वे मुझे चाहते हों? क्या वे चाहते होंगे उसी तरह? और मुझे स्वीकार कर लेंगे? अगर ऐसा हो और वे मुझे अपनी दासी बनाने को तैयार हों, तो

मेरा अहोभाग्य···

लेकिन क्या ऐसा सौभाग्य मेरा हो सकता है···

···नहीं, अब मेरा जीना बेकार है···आज इलाहाबाद से उनके ब्याह की खबर आई है···शारदा जीजी के पास निमंत्रण-कार्ड आया है।

अच्छा है, वे सुख से रहें। इसीमें मैं भी खुश हूं। मेरी ज़िन्दगी तो खराब हो ही चुकी है, दूसरों की मैं क्यों खराब करूं? और फिर मुझे हक़ ही क्या है उनके रास्ते का रोड़ा बनने का?

लेकिन मैं अब क्या करूं? मेरे लिए तो अब बस वही एक रास्ता बाकी है। मुझे तो अब मौत का ही सहारा है। पति ने इसलिए ठुकराया कि प्रेमी ने ठुकरा दिया था, और प्रेमी अब इसलिए ठुकराता है कि पति द्वारा ठुकराई गई हूं। सचमुच इस दुनिया में हम औरतों को भगवान ज़िन्दगी ही बेकार देते हैं···

···दुनिया में यह पाप सिर्फ मैंने ही नहीं किया है, और भी ऐसी न जाने कितनी स्त्रियां होंगी जो रोज़ अपनी पवित्रता को भंग करती हैं; फिर मैंने तो···मैंने तो यह सब सोचा ही नहीं था। लेकिन मैं कह भी कैसे सकती हूं कि मैं निर्दोष हूं? कौन मानेगा? शायद कोई नहीं। और क्या परिणाम होगा? शायद कोई नहीं···

अगर कोई पाप करता है, तो उसके भाग्य को उसके साथ रहना चाहिए। बस फिर कुछ नहीं हो सकता, कोई कुछ नहीं कर सकता, सब कुछ वैसा ही रहता है···

मैंने ज़्यादा कहानियां और उपन्यास नहीं पढ़े। फिर भी जो पढ़े हैं, उनमें कभी-कभी ऐसी बातें मिल जाती थीं। मेरी जो हालत

है, इसमें ज़्यादातर लड़कियां घर से निकाल दी जाती हैं या खुद ही निकल जाती हैं, या नौकरी करने लगती हैं और या वेश्या बन जाती हैं...। मैं शायद इनमें से कुछ नहीं कर सकती। और जो लड़की इनमें से कुछ भी नहीं कर सकती है, उसके लिए आत्महत्या के अलावा और कोई रास्ता नहीं रह जाता...

कहते हैं, आत्महत्या पाप होती है...मगर किसीके सामने दुनिया सिर्फ यह रास्ता ही खुला छोड़ देती है, तब ? किसीको हांकते हुए कुएं के मुंह पर ले जाओ और पीछे से लकड़ी मारो कि आगे बढ़ो, पर कुएं में न कूदो...व्यवस्था सबल के लिए ही है...

लोग तरह-तरह से आत्महत्या करते हैं...ज़हर खाकर, ट्रेन से कटकर, जलकर, फांसी लगाकर और न जाने कैसे-कैसे ; लेकिन यह सब तो बड़ा मुश्किल होता होगा।

...और भी तरीके हैं, काफी आसान...सुना है, पैर फिसल जाने या सीढ़ी पर से गिर जाने या छत पर से कूद जाने से भी लोग मर जाते हैं...कुतुब मीनार से कूदकर प्राण देते हैं...

मां बताती थीं कि जिन लोगों की मौत स्वाभाविक रूप से आयु पूरी होने पर नहीं होती, वे भूत बन जाते हैं। वे इस संसार में उनसे बदला लेने आते हैं, जो उनपर अत्याचार कर चुके होते हैं...

...कभी-कभी अतृप्त आत्माएं भटकती रहती हैं, और तब तक भटकती रहती हैं, जब तक किसी न किसी तरह से उन्हें तृप्ति न मिल जाए...

...एक इच्छा रही जाती है।

एक बार मैं रमेश की होनेवाली पत्नी को देख लेती, उसको विवाहित देख लेती। लेकिन अब यह सब क्या सोचना या काहे के लिए किसी चीज़ की इच्छा करना।

···ठीक है, अब कुछ भी नहीं बचा है···हां, अब सब कुछ समाप्त हो चुका है···

अपने इस अन्तिम समय में मैं भगवान से अपने सारे पापों के लिए क्षमा मांगती हूं···अब सिर्फ भगवान का ही सहारा है, और वही मेरा उद्धार कर सकते हैं···

मेरे मां-बाप, रमेश···नहीं, अब कोई नहीं···मेरी किसीको ज़रूरत नहीं है, मैं इस दुनिया में पाप का भार हूं, मेरा यहां न रहना ही अच्छा है···

भगवान मुझे क्षमा करना···

रीता की डायरी में अलग-अलग पृष्ठों पर ऊपर की बातें लिखी हुई थीं। तारीख किसी भी पृष्ठ पर नहीं पड़ी हुई थी। कहीं-कहीं पर कुछ पन्ने फटे हुए भी थे और कहीं-कहीं पर पेंसिल या कलम से लिखा हुआ कुछ अंश काटा हुआ भी था। बीच-बीच में कुछ जगह खाली भी छुटी हुई थी और कुछ जगहों पर लिखावट अस्पष्ट थी। एकाध स्थल पर एक-दो शब्द लिखकर आगे खाली जगह भी छोड़कर सादी लकीरें खींच दी गई थीं। कलम या पेंसिल से कुछ फूल या बेल-बूटे भी जगह-जगह पर बने हुए थे। 'रीता' नाम को जगह-जगह संवारकर लिखा गया था और कहीं-कहीं उसके साथ मुझ अभागे का भी नाम जुड़ा था।

और जब मैं डायरी पढ़कर उठा, तो मेरी आंखों में आंसू छलछला आए थे।

ग्यारह

दो दिन बाद ही मेरा विवाह हो गया। मैं सारे कार्यक्रम में पत्थर की तरह बना रहा। मुझको जहां उठाकर बैठा दिया जाता था, वहां बैठ जाता था, और जब उठा दिया जाता था, तब उठकर खड़ा हो जाता था। सब कार्य सम्पन्न हो जाने पर जब मैं दुल्हन को लेकर घर आया, तब चारों तरफ सभी लोग खुश दिखाई दे रहे थे।

सिर्फ मेरा हृदय रो रहा था।

विवाह के अगले ही वर्ष मेरी तरक्की हुई और बच्चा भी। मेरे ससुर महोदय ने तरह-तरह के उपहार भेजे। मेरे पिताजी ने घर के दरवाज़े पर बाजे बजवाए।

लेकिन मैं बुत बना सब कुछ देखता रहा।

आज मैं समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता हूं। मेरी सफलता और मेरा चरित्र दूसरों के लिए आदर्श और अनुकरण करने योग्य समझा जाता है। आज मैं समाज के प्रमुख और खानदान के शीर्षस्थ लोगों में हूं और मेरा प्रभाव सर्वत्र है। सभा-संस्थाएं मेरा नाम अपने पदाधिकारियों की सूची में दे देने की स्वीकृति पाकर अपने को धन्य समझती हैं और मेरे प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट

करती हैं।

दुनिया मेरी सफलता पर आश्चर्य करता है। मेरी सफलता और चरित्र की प्रसिद्धि के कारण दूसरे मुझसे ईर्ष्या करते हैं। लेकिन मैं इसके खोखलेपन को जानता हूं, इसलिए इस सबपर रोता हूं। मुझे अपनी कठोरता, अपनी स्वार्थपरता और अपनी तुच्छहृदयता पर आश्चर्य होता है। मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं वही व्यक्ति हूं जो एक दिन रीता को बचाने के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा देने को तैयार हो गया था।

यहां पहाड़ पर भी प्रकृति की गोद में मुझे शांति नहीं मिलती। मुझे रीता दिखाई देती है, उसकी आंखें दिखाई देती हैं। और तब मेरी दृष्टि अनचाहे ही शून्य में भटकने लगती है। जिधर भी देखता हूं, बाहर, भीतर, ऊपर आसमान पर, नीचे झील पर, क्षितिज की दूराई में, अपने कमरे के कोने के सूनेपन में, एकटक देखने पर कुछ दिखाई देता है। हां, वहां पर ऐसा लगता है, जैसे किसीकी फीकी सूरत भटकती हो; और हां, इसके अलावा भी कुछ, शायद दो आंखें, दो सूनी आंखें, विस्फारित-सी, आर्द्र...और ये आंखें अनदेखी नहीं हैं, अपरिचित भी नहीं हैं, ये वही आंखें हैं, हां वही आंखें, जो मेरे अंतर को बेध रही हैं और जो उसे तब तक बेधती रहेंगी, जब तक मैं उनसे विमुख होकर पीछे भागता रहूंगा, जब तक मैं हर चीज़ को भौतिक सुख-दुःख और हानि-लाभ के दृष्टिकोण से परखता रहूंगा, जब तक इसी तरह से किसीकी व्यथा को ठुकराता रहूंगा, जब तक मेरी राहों में वे बिछी रहेंगी और जब तक मैं उनसे भागता रहूंगा।

लेकिन नहीं...ये सब बेकार की बातें हैं। दुर्बल भावनाओं का बहाव, जिसकी मैं अब गति ही बदल चुका हूं। वे हल्की अनुभूतियां जिनको मैंने कुचलकर इस लायक नहीं रहने दिया कि वे मुझे पीड़ित कर सकें। फिर वे क्यों मुझे इस तरह दिखाई पड़ती हैं, क्यों मुझे

याद आती हैं, क्यों मुझे बेधती हैं, क्यों मुझे व्यथित करती हैं, क्यों मेरा पीछा करती हैं···

मैं रात-रात-भर भयानक स्वप्न देखा करता हूं। मुझे स्वप्न में रीता का भूत दिखाई देता है, अपनी लाल-लाल अंगारे जैसी आंखों से मुझे घूरता हुआ, अपने लम्बे-लम्बे डरावने दांत किटकिटाता हुआ और अपने भयानक नुकीले नाखून दिखाकर मुझे भयभीत करता हुआ। मैं सहमकर जाग उठता हूं और करवटें बदलकर अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाने की कोशिश करता हूं, अपने बच्चों में, अपनी पत्नी में।

कभी-कभी मुझे रीता अपने यथार्थ चेहरे में भी दिखाई देती है। लेकिन अब वह मेरी आत्मा को धिक्कारती-सी जान पड़ती है। लेकिन मैं उसके सामने अपना सिर झुका देता हूं, कृतज्ञता से।

अक्सर मेरे मन में यह विचार भी आता है कि मैं आत्महत्या कर लूं। लेकिन फौरन ही मैं इस दुर्बल विचार को झिटककर अलग कर देता हूं। मेरे जैसा व्यक्ति आत्महत्या कैसे कर सकता है। मैं जीवन में बड़ी सफलता प्राप्त करनेवाला आदमी हूं, जो हमेशा संघर्षों से जूझता रहा, जीवन-भर किसीभी विपत्ति को देखकर पीछे नहीं हटा···मैं जीवन में बड़ी से बड़ी सफलता प्राप्त करनेवाला आदमी हूं, जो हमेशा संघर्षों से जूझता रहा, जीवन-भर किसीभी विपत्ति को देखकर पीछे नहीं हटा। और आत्महत्या? वह दुर्बलता है, कायरता है, जावन से डरकर भागना है, मानवता के प्रति पाप है···

लेकिन मेरा यह सुखी जीवन ही मेरे लिए अब अभिशाप बन गया है। यद्यपि आज मैं यह महसूस करता हूं कि मुझे किसी तरह की कोई कमी नहीं है आर ईश्वर की कृपा से घर सभी तरह से भरा-पूरा है। लेकिन फिर भी मुझे जो सबसे बड़ा दुःख है वह यह कि मुझे कभी शांति नहीं मिलती। मैं हमेशा पश्चात्ताप की अग्नि से

जलता रहता हूं और आत्मग्लानि से पीड़ित रहता हूं।

रीता सच्ची थी। उसके कुल पर कलंक लगा। उसके चरित्र पर आंच आई व उसके पाप की कहानी सभी जान गए। मैं सच्चा नहीं हूं, लेकिन लोग मेरे यश के गीत गाते हैं, मुझे अत्यन्त चरित्रवान समझते हैं। और आज तो कोई यह बात अपनी ज़बान पर लाने का साहस नहीं कर सकता कि कभी रीता या वैसी अन्य किसी लड़की से मेरा कोई सम्बन्ध रहा होगा, जो पापिष्ठा हो···

खैर, छोड़िए इन बातों को। अब तो बस मुझे यही एक कष्ट है कि मेरी आत्मा को किसी भी प्रकार से शांति नहीं मिलती। जब मेरा कष्ट बहुत बढ़ जाता है, तब मैं कुछ दिनों के लिए सारे कोलाहलों से दूर किसी रमणीक प्राकृतिक स्थान को चला जाता हूं और अपने हृदय की धधकती हुई आग को शांत करने का प्रयत्न करता हूं। पर वैसा होता नहीं।

लेकिन आज आपसे यह सब कुछ कह-सुना देने के बाद मेरा मन काफी हल्का हो गया है, ऐसा मैं अनुभव कर रहा हूं।

◇ ◇ ◇

मुद्रक : शिक्षा भारती प्रेस, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

अब तक प्रकाशित उपन्यास

बेबसी	अशू
आस-निरास	चन्द्रनाथ
हृदय की परख	दुर्गेशनन्दिनी
ज्वालामुखी	विषवृक्ष
वनवासी	शहीद
मोती	निशी
गजरा	ऊंचे पर्वत
पेरिस का कुबड़ा	हम सब गुनहगार
स्वयंवर	अधूरा सपना
आभा	कलाकार का प्रेम
धर्मपुत्र	एक स्वप्न, एक सत्य
बीते दिन	एक लड़की : दो रूप
बड़ी-बड़ी आंखें	प्रेम या वासना
बर्फ़ का दर्द	छलना
ग़द्दार	रात और प्रभात
एक गधे की आत्मकथा	पाखंडी
देवदास	प्यार की ज़िन्दगी
बिराज बहू	एक अनजान औरत का खत
पंडितजी	संघर्ष
शेष प्रश्न	प्रेमिका
चरित्रहीन	पहला प्यार

वे अनजाने ही एक-दूसरे की ओर बढ़े चले गए—बढ़े ही चले गए…और एक वक्त ऐसा आया कि वे अलग होने में असमर्थ थे। ओह !… वाकई, दिल के अधूरे अरमानों व अनकही साधों की बेजोड़ कहानी है 'रीता'।

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स